भक्ति वैभव
ॐ
प्रकाशक—
गोपाल आश्रम
जी० टी० रोड फिरोजाबाद, (आगरा)

"भक्ति वैभव"

—०—

मुमुक्षुर्वै शरणमहम् प्रपद्ये

हे सर्वेश्वर मोक्षार्थी आपकी शरण में हूँ

परमहंस श्री १०८
स्वामी कृष्णानन्दजी सरस्वती
वेदवेत्ता, दर्शन तत्त्वज्ञ

प्रकाशक—
गोपाल आश्रम
जी० टी० रोड
फिरोजाबाद, (आगरा)

प्रथम बार

मूल्य १) रुपया

प्रकाशक—
गोपाल आश्रम
जी० टी० रोड
फिरोजाबाद (आगरा)

×

संकलन कर्त्ता
परमहंस
स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती
गोपाल आश्रम फिरोजाबाद

×

प्रथम बार

×

अक्षय तृतीया सम्वत् २०२४

×

मूल्य १) रुपया

मुद्रक—
सुगनचन्द अग्रवाल,
श्री चम्पा प्रिंटिंग प्रेस,
भरत दरवाजा, मथुरा ।

ॐ

गोपाल-आश्रम

परम कृपालु अनन्त कोटि ब्रह्माण्डविनायक परात्पर प्रभू की
परम दयालुता से, ब्रह्मलीन अनन्त श्री विभूषित श्री स्वामी
शुकदेवानंद जी महाराज को सत्प्रेरणासे एवं पूज्य चरण अनन्त
श्री विभूषित श्री स्वामी भजनानंद जी महाराज महामडलेश्वर
कीकृपा से श्री सेठ रामगोपाल जी द्वारा गोपाल आश्रम के नि -
मित २६ बीघा पुख्ता भूमि एवं इक्यावन हजार रुपया दान
स्वरुप में प्रदान किया हैं जिसका विधिवत् ट्रष्ट बन चुका है।
और इस आश्रम का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिये इस
आश्रम को अनन्त विभूषित श्री स्वामी भजनानंद जी महा-
राज महामडलेश्वर जी ने परम हंस श्री १०८ श्री कृष्णान्द जी
महाराजको सौंप दिया है और उनकी सहायता के लिए स्थानीय
एक प्रबन्ध कारिणी की कमेटी बना दी गई है। जिसके पदा-
धिकारी इस प्रकार है, श्री रामगोपाल जी अध्यक्ष, शम्भू
दयालजी उपाध्यक्ष, श्री राजाराम जी मन्त्री, श्री नारायन
स्वरूप जी माथुर उपमंत्री, श्री रामेश्वर दयाल जी कोषाध्यक्ष,
श्री मुखरामजी निरीक्षक, श्री रामकिशन जी, श्री राजबिहारी
लाल जी, श्री रामदयालजी, श्री कृष्णलाल जी, महीपाल जी,
त्रिलोकीनाथ जी, भगवान स्वरूप जी, श्रीप्रकाश जी, जगदीश
प्रसाद जी, गिरधारी लाल जी, विशम्बर दयाल जी, शिवचरन
लाल जी एवं सूरजभान जी विशेष सहायक हैं ये सभी सज्जन
आश्रम के विशेष हितकारीं एवं निष्ठावान संलग्न परिश्रमी
कार्यकर्त्ता हैं। इन सज्जनों ने यथाशक्ति दान दिया है और
अनेक सज्जनों ने दान देने का बचन दिया है। इस आश्रम का

मुख्य उद्देश्य इस माया से तपते हुए जीव को भौतिक बाद
चकाचौंध से हटा कर अध्यात्मवाद की तरफ मोड़ देना
जिससे यह अभागा मानव सच्चे माने में सुख शांति पा सके
इस आश्रम का प्रथम लक्ष्य नित्य का सत्संग है जिससे मनुष
की बुद्धि को भोजन मिल सके और यह मानव जो आज दैव
गुणों का परित्याग करके आसुरी गुणों की तरफ बढ़ता ज
रहा है पुन: दैवी गुणों का अनुसरण करने लगे जिससे संसा
की बढ़ती हुई उदण्डता, चंचलता, अनुशासन हीनता औ
स्वच्छन्दता नष्ट हो और नैतिक चरित्र ऊँचा हो इसके वास
सत्संग भवन का निर्माण होना है जो अति आवश्यक है औ
धनाभाव के कारण अभी प्रारम्भ नहीं हो सका।

द्वितीय : एक सुन्दर भव्य मदिर का निर्माण होना
जहाँ साधक लोग अपनी साधना कर सके।

तृतीय कार्य एक आदर्श बाल विद्या मन्दिर का निर्माण
है जहाँ बालकों को अपने ढंग की चरित्र निर्माण की अनूठ
शिक्षा दी जाय जिससे वहां उनका चरित्र निर्माण हो सके औ
बालक चरित्रवान बनकर निकलें इसके वास्ते भी छात्रावास
विद्यालय, पुस्तकालय इत्यादि का निर्माण होना है।

चतुर्थ योजना एक औषधालय की है जहाँ रोग पीड़ित
का निशुल्क चिकित्सा हो सके और दरिद्र भगवान की सेवा हो

पंचम अति आवश्यक कार्य आश्रम को सुन्दर व आक-
र्षित बनाना है जिसके वास्ते वहां बगीचा, धार्मिक चित्र आदि
भी बनाना है परन्तु यह सब काम उन जगदाधार का ही है
और वही करायेंगे ऐसा हमारा अटल विश्वास है मनुष्य त
केवल निमित्त मात्र है केवल उसी का सहारा है और प्र

कृपा करेंगे। जो दानी सज्जन इस शुभ कार्य में धन दे रहे हैं या देंगे उनके नामांकित पत्थर भी आश्रम में लगवाये जायेंगे ऐसी ट्रष्ट के द्वारा समुचित व्यवस्था है।

प्रभू कृपा से यह सभी कार्य भक्त वत्सल भगवान का है और उन्हीं की प्रेरणा से सम्पन्न हो रहा है।

परम पूज्य श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज के द्वारा लिखित पुस्तकों के प्रकाशन द्वारा भी जनता लाभान्वित होगी।

निवेदक—
मन्त्री राजाराम
गोपाल आश्रम
जीं० टी० रोड
फिरोजाबाद उ० प्र०
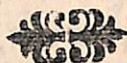
* प्रभाती *

जागो सज्जन वृन्द हमारे, मोह निशा के सोवन हारे ।।
जागो जागो हुआ सबेरा , मोह निशाका उठगया डेरा।
ज्ञान भानु ने किया उजेरा, आशा दुखद अस्त भये तारे।।
सोते सोते जन्म गँवाया, देह गेह में मन भरमाया ।
तुमको चेत अभी नहिं आया, छोड़ो नींद उठो अब प्यारे।।
यह घरबार जगत सब सपना, सुत दारा कोई नहिं अपना।
मेरा तेरा छोड़ कल्पना, मायामोह तजो अब प्यारे।।
धन दौलत सुत जगत झमेला,बिजली कासाहै यह उजेला।
संग में जावे एक न धेया,भूले किस परहो तुम प्यारे।।
काम क्रोध ने जीव खजाना, सोते पर लूटा मन माना। ।
तुमने कुछ न अभीतक जाना, सोते मस्त पड़े मतवारे ।।
यह संसार रात्रि है भारी, सोती जिसमें दुनियाँ सारी ।
जगते संत कोई ब्रतधारी, परमारथ पथ के उजियारे।।
जग कर संत शरण मैं जाओ,जाकर रामनाम प्रियगाओ।
पूरण शान्ति हृदय में पाओ, मिट जावें भय सकट सारे।।
जानो तभी कि अब हम जागे,जब मन विषयोंसे खुद भागे।
पूरण चित्त राम मैं लागे, जिसको पाकर संत सुखारे।।
सीतापति रघुपति रघुराई, माधव श्याम कृष्ण यदुराई।
मोहन श्री गोविन्द सुखदाई,'मञ्जुल' नामजपोसुखकारे।

ॐ

श्री दैवी सम्पद् मण्डल

की

दैनिक प्रार्थना

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥१॥

अर्थ—मैं उन वाणी के अगोचर, सत्व, रज, तम गुणों से रहित, भगवान् सद्गुरुदेव को नत मस्तक प्रणाम करता हूँ जो साक्षात् ब्रह्म-आनन्दस्वरूप, दिव्य सुख प्रदाता एवं समस्त ज्ञान की मूर्ति हैं। जो सुख दुःख से परे रहते हुये अखिल ब्रह्माण्ड में आकाश के समान ओत प्रोत (व्यापक) हैं जो (तत्वमसि) आदि वेदान्त महावाक्यों का लक्ष्य हैं। जो सदा अद्वितीय, नित्य एकरस मल विक्षेपादि रहित ध्रुव कूटस्थ और समस्त बुद्धि जीवियों की बुद्धि के साक्षात् द्रष्टवा हैं।

करपूंगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदावसंतं हृदयारविंदेभवंभवानी सहितं नमामि ।। २ ।।

अर्थ—कर्पूर के समान गौर वर्ण, दया के साक्षात् अवतार, संसार के परम तत्व, सर्पराजों को माला के समान धारण करने वाले, भक्तों के हृदय कमल पर सदा विराजमान, पार्वती सहित भगवान् शङ्कर को नमस्कार करता हूँ ।

बसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुं ।। ३ ।।

अर्थ—मैं श्री वसुदेव के सुपुत्र, देवाधिदेव जगद्-गुरु भगवान् कृष्ण की वन्दना करता हूँ जिन्होंने देवी देवीकी के गर्भ से अवतरित होकर परमानन्द की प्राप्ति कराई और कंसचाणूर जैसे दुर्दन्त दानवों का दमन किया ।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं,
सीतासमारोषितवामभागम् ।
पाणौ महाशायकचारुचापं,
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।। ४ ।।

अर्थ—मैं रघुवंश विभूषण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करता हूं जिनका शरीर नील-कमल के समान सांवला और अति सुकुमार है। जिनके वाम भाग में जगद्धात्री-आराध्या महारानी श्रीसीताजी

सुशोभित हैं और जो अपने हाथों में सदा अमोघ सायक एवं धनुष धारण किये रहते हैं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव,
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥ ५ ॥

अर्थ—हे परमदेव परमात्मन! आप ही मेरे माता पिता, भाई और मित्र हैं तथा आप ही मेरी विद्या धन और सर्वस्व हैं अर्थात् सब कुछ आप ही हैं मेरे, ऊपर कृपा दृष्टि बनाये रक्खें।

* १ *

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुञ्ज-हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों।
मो समान आरति नहिं, आरतिहर तोसों॥
ब्रह्म तू हौं जीव, तू ठाकुर हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा,तू सब बिधि हितु मेरो॥
तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावे।
ज्यों त्यों 'तुलसी'कृपालु, चरण शरण पावे॥

* २ *

हे दयामय ! आपही संसार के आधार हो।
आपही करतारहो हम सबके पालन-हार हो॥

जन्मदाता आप ही माता पिता भगवान् हो।
सर्व सुखदाता सखा भ्राता हो तन धन प्राण हो॥
आपके उपकार का हम ऋण चुका सकते नहीं।
बिनु कृपा के शान्ति सुख का सार पा सकते नहीं॥
दीजिये वह मति बनें हम सद्गुणी संसार में।
मनहो 'मञ्जुल' धर्ममय और तन लगे उपकार में॥

* दोहा *

मो सम दीन न दीन हित, तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुवंशमणि, हरहु विषम भवपीर॥
बार बार वर माँगहुं, हरषि देहु श्रीरङ्ग।
पद सरोज अनपायनी, भक्ति सदा सत्संग॥
अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्बान।
जन्म जन्म रति रामपद, यह वरदान न आन॥
स्वामी मोहि न बिसारियो, लाख लोग मिलि जाहिं।
हमसे तुमको बहुत हैं, तुमसे हमको नाहिं॥
नहिं विद्या नहिं बाहुबल, नहिं खरचन को दाम।
मोसे पतित अपंग की, तुम पति राखो राम॥
श्रवण सुयश सुनि आयहुँ, प्रभु भञ्जन भवभीर।
त्राहि-त्राहि आरति हरण, शरण सुखद रघुबीर॥

कामिहिनार पियारिजिमि, लोभिहिंप्रिय जिमिदाम ।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहिराम
सियावर रामचंद्र की जय, शंकर हरिऔउम'जय जय
सियाराम

ॐश्री १०८श्री स्वामी एकरसानन्दजी सरस्वतीजी से प्राप्त उपदेश। इन परमात्माकी आज्ञाओं पर जो चलेगा उसकी मुक्ति अवश्य होगी । यह उपदेश वेद तथा गीता-नुसार हैं: -

पहला—ससार को स्वप्नवत् जानो।
दूसरा—अति हिम्मत रखो
तीसरा-अखंड प्रफुल्लित रहो दुःख में भी
चौथा—परमात्मा का स्मरण करो जितना बन सके।
पाँचवाँ—किसी को दुःख मत दो, बने तो सुख दो।
छठा—सभी पर अति प्रेम रक्खो।
सातवाँ—नूतन बालवत् स्वभाव रक्खो ।
आठवां-मर्यादानुसार चलो।
नवाँ-अखंड पुरुषार्थ करो गङ्गा प्रवाहवत, आलसी मत बनो
दसवाँ-जिसमें तुमको नीचा देखना पड़े ऐसा काम मत करो ।

अथाच्युताष्टकम्

अच्युतं केशवं रामनारायणं
कृष्ण दामोदरं वासदेवं हरिम् ।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं ,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥१॥

अर्थ अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि, श्रीधर, माधव, गोपिकावल्लभ, जानकीनायक रामचन्द्रजी को मैं भजता हूँ ॥१॥

अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं,
माधवं श्रीधर रधिकाराधितम् ।
इन्दिरा मन्दिरं चेतसा सुन्दरं
देवकी नन्दनं नंदनं संदधे ॥२॥

अर्थ—अच्युत केशव, सत्यभामापति, माधव, श्रीधर, राधिकाजी से पूजित, लक्ष्मी निवास, सुन्दर देवकीनन्दन नन्द नन्दन का चित्त से ध्यान करता हूं ॥२॥

विष्णवे जिष्णवे शङ्खिने चक्रिणे
रुक्मणी रागिणे जानकी जानये ।
बल्लवी बल्लभायार्चितायात्मने ,
कंस विध्वंसिने वंशिने ते नमः ३॥

अर्थ—हे भगवन् ! आप व्यापक हैं सबके विजेता हैं शंख चक्र धारण किये रहतेहैं, रुक्मणीजी के प्रेमी हैं जानकीजी केपति हैं, गोपियों के वल्लभ हैं, परमपूज्य तथा आत्म-स्वरूप हैं, कंस के नाशक तथा मुरली मनोहर हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूं ॥३॥

कृष्ण गोविन्द हे नारायण,
श्रीपते वासुदेवाजित श्रीनिधे ।
अच्युतानन्त हे माधवाधोक्षज,
द्वारकानायक द्रौपदीरक्षक ॥ ४ ॥

अर्थ—हे कृष्ण, हे गोविन्द, हे राम, हे नारायण, हे लक्ष्मीनाथ, हे वसुदेवनन्दन, हे अजित, हे शोभाधाम, हे अच्युत, हे अनन्त, हे लक्ष्मीनाथ, हे इन्द्रियों से अगम्य, हे द्वारिकानाथ, हे द्रोपदी रक्षक, (मुझ पर दया करो) ॥ ४ ॥

राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो,
दण्डकारण्यभूपुण्यताकारणः
लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितो,
ऽगस्त्यसम्पूजितो राघवः पातुमाम् ॥५॥

अर्थ—राक्षसों से कोपित, सीताजी से सुशोभित, दण्ड-कारण्य की भूमि को पवित्र करने वाले, लक्ष्मण से युक्त, बानरों से सेवित, आगस्त्य जी से सम्पूजित, राघव मेरी रक्षा करें ॥५॥

धेनुकारिष्ट कानिष्टकृद्द्वेषिहा,
केशिहा कंसहृद्वंशिकावादकः ।
पूतना कोपकः सूरजा खेलनो,
बालगोपालकः पातुमां सर्वदा ॥ ६ ॥

अर्थ—धेनुक और अरिष्ट नाम के असुरों का नाश करने वाले, शत्रुओं का नाश करने वाले, केशी तथा कंस का नाश करने वाले, वंशी के बजाने वाले, पूतना पर कोप करने वाले, यमुना पर खेलने वाले, बालगोविन्द मेरी सदा रक्षा करें ॥ ६ ॥

विद्यु द्युद्योतवत्प्रस्फुरद्वाससं,
प्रावृडम्भोदवत्प्रोल्लसद्विग्रहम् ।
वन्यया मालयाशोभितोर:स्थलं,
लोहिताङ्घ्रिद्वय वारिजाक्षं भजे ॥ ७ ॥

अर्थ—बिजली के प्रकाश के समान जिनका वस्त्र चमक रहा है, वर्षा के मेघ के समान जिनका शरीर सुशोभित हो रहा है, बनमाला से जिनका हृदय सुशोभित है, जिनके दोनों चरण कमल अरुण वर्ण के है उन कमलनेत्र भगवान् को मैं भजता हूं ॥ ७ ॥

कुञ्चितै: कुन्तलैर्भ्राजमानाननं,
रत्नमौलिं लसत्कुण्डलं गण्डयो: ।
हारकेयूरङ्क कङ्कणप्रोज्ज्वलं,
कङ्किणी मञ्जुलं श्यामलं तं भजे ॥८ ।

अर्थ—जिनका मुख घुँघराले बालों से सुशोभित है, जिनके मस्तक पर रत्न-मुकुट शोभा दे रहा है तथा कपोलों पर कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं, हार केयूर (बाजू बन्द) कङ्कण तथा किङ्किणी जाल से शोभित उन श्याम सुन्दर को मैं भजता हूं ॥ ८ ॥

❀ महात्म्य ❀

अच्युतस्याष्टक यः पठेदिष्टदं,
प्रेमत: प्रत्यहपूरुषः सस्पृहम् ।
वृत्ततः सुन्दरं कर्तृ विश्वम्भर,
स्तस्य वश्यो हरिर्जायतेसत्वरम् ॥ ९ ॥

अर्थ—जो मनुष्य इष्ट फलदायक, सुन्दर छन्दों वाले इस अच्युताष्टक का प्रतिदिन श्रद्धा और प्रेम के साथ पाठ करता है, जगत के कर्ता धर्ता भगवान् विष्णु उसके शीघ्र ही वश में हो जाते हैं ।

प्रमुख भगवत् सेवी सदस्यों की नामावली

१ सुश्री माता सुखदा देवी	वृंदावन
२ सुश्री प्रभा रश्मि	वृंदावन
३ माता श्याम प्यारी	कपूरथला (पंजाब)
४ श्री रामदास बहल	कपूरथला(पजाब)
५ ,, ज्ञानचंद अग्रवाल	अम्बाला
६ ,, शांति स्वरुप मित्तल	जगाधरी
७ ,, छिंगामल सत्यदेव	हाथरस
८,, हुकुमचंद वेद भूषण	धूरी (पजाब)
९,, राम सहाय जी	,, ,,
१० श्री रामचंद लछमणदास	,, ,,
११ बालकृष्ण खन्ना	फिरोजपुर शहर
१२ श्री हरदयाल एडवोकेट	,, शहर
१३के० एल० खूल्लरएडवोकेट	फिरोज पुर छावनी
१४श्री राजकुमार सैनी	,, शहर
१५ हकीम देशराज मोगा	,, शहर
१६श्री ओम प्रकाश एडवोकेट (इनकमटैक्स)	,, शहर
१७श्री देवी कौशल्या जी	नरवाना (हरियाना)
१८ श्री दिवान कृष्ण कुमार	,,
१९ ,, शादीराम भगवानदास	,,
२० ,, जवाहरलाल जी सिंगला	,,
२१ ,, यशपाल जी	,,
२२,, मदनमोहन जी	,,
२३,, लक्षमण दास जी	,,
२४,, विसेम चद जी	,,
२५,, डाक्टर देवराज जी अग्रवाल	मोगा (पजाब)
२६,, बिहारी लाल जी	,,
२७,, दिवान चन्द जगन्नाथ	,,

२८ श्री परशुराम गुप्ता मोगा [पंजाब]
२९ ,, डाक्टर श्यामलाल गर्ग, निहालसिंह मंडी (फिरोजपुर)
३० श्रीमती जानकी साहनी देहली ,
३१ ,, बनारसीदास अग्रवाल भटिंडा
३२ ,, शादीराम मदनलाल ,,
३३ ,, ईश्वरदास बंसल ,,
३४ ,, रामेश्वर लाल मजिस्ट्रेट देहली
३५ ,, बी० एस० भटनागर ,,
३६ ,, के० एल० मुंजल ,,
३७ ,, ओम प्रकाश जी जगाधरी
३८ ,, नानक चंद बनारसी दास यमुना नगर
३९ ,, मदन गोपाल ,,
४० ,, रामदयाल चौथइया फिरोजाबाद (उ०प्र०)
४१ ,, ओम प्रकाश जी सोरे वाले कैथल (हरियाना)
४२ श्री मती कमलेश जी ,,
४३ श्री मती कस्तूरी लाल जी धूरी (पंजाब)
४४ ,, अनंत राम जी हरिद्वार
४५ ,, जगदीशचन्द्र शर्मा मुजफ्फर नगर
४६ ,, डाक्टर बद्रीनाथ जी देहली
४७ ,, हीरा नन्द गुरनामी मेरठ शहर
४८ ,, माता प्रकाशवती थापर लुधियाना
४९ ,, हरलाल अग्रवाल ,,
५० माता प्रेम कौर जी धूरी (पंजाब)
५१ ,, भीम सेन तलवाड़ फिरोजपुर शहर
५२ ,, गुरुदत्तामल राम किशन जलालाबाद।
५३ ,, विहारीलाल राजकुमार जीरा (पंजाब)
५४ ,, मुलखराज सेतिया जलालाबाद (पंजाब)

वेद-तत्व

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।१।

प्रपच्चकी उत्पत्तिसे पूर्व मायाधिपति सिसृक्षु परमात्मा से हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति हुई।

(यद्यपि परमात्मा ही हिरण्यगर्भ है तथापि उसकी उपाधि आकाशादि भूतों की ब्रह्म से उत्पत्ति होनेके कारण–उन उत्पन्न भूतोंकी उपाधिसे उपहित होनेके कारण उसे उत्पन्न कहा जाता है]

वह उत्पन्न होते ही एक होनेपर भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आदि सृष्टिका पति—स्वामी हो गया। न केवल पति ही हुआ प्रत्युत उसीने विस्तीर्ण द्युलोक एवं हमलोगोंके द्वारा दृश्यमान इस पुरोवर्तिनी पृथिवी को भी धारण किया।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।२।

वही प्रजापति परमात्मा आत्मशोधन एवं आत्माबोधनके द्वारा सबको आत्मदान करता है और वही सबको अपने-अपने पुरुषार्थ को सिद्धिके लिए बलदान भी करता है। सम्पूर्ण विश्व एवं श्रेष्ठ देवता उसके प्रशासन—आज्ञा को शिरोधार्य करके सेवन करते हैं और उस आज्ञाके लिए प्रार्थना भी करते रहते हैं जिससे अमृत अर्थात् अमृत्व की प्राप्ति होती है, वह और स्वयं अमृतत्व भी उसी की छाया है। मृत्यु भी उसी की छाया है ऐसे एक सुखरूप प्रजापति ईश्वर के लिए हम अपना-जीवन हविष्य का अर्पण करके पूजन कर रहे हैं।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इन्द्राजा जगतो बभूव ॥
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।३।

जो प्रजापति अपने माहात्म्य से अर्थात् अपनी विभुता एवं सामर्थ्य से श्वासोच्छवासशील एवं निमेषोन्मेषयुक्त इस सम्पूर्ण जगत् का एक छत्र-एक मात्र अद्वितीय स्वामी है— जो इस दृश्यमान द्विपद एवं चतुष्पद अर्थात् सभी प्राणियों का एक मात्र शासक है इस परमानन्दस्वरूप स्वयं प्रकाश प्रजापति को अपनी जीवनहवि अर्पण करके पूजा करते हैं।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहुः।
यस्येमाःप्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ।४।

सृष्टि के तत्वज्ञ कहते हैं कि उस वेदप्रसिद्ध पूर्वसिद्ध प्रजापति की महिमा है। ये हिमवान् आदि सब पर्वत तथा नदियों के साथ-साथ समुद्र उसी से उसी में सृष्टि होने के कारण उसीके माहात्म्य, ऐश्वर्य एवं महाभाग्य को प्रकट कर रहे हैं।

प्राची आदि दिशाएँ और आग्नेयादि विदिशाएँ उसी प्रजापति की भुजा के समान प्रधान नियम्य एवं स्वरूपभूत हैं। उस एक सुखस्वरूप स्वयंप्रकाश परमात्मा की हम अपने हृदयादि सर्वस्व की हवि अर्पण करके पूजा करते हैं।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः
योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।५

जिसने इस ग्रह-नक्षत्रादि से युक्त विशाल अन्तरिक्ष को प्रकट किया है—पृथिवी को स्थिर किया है, स्वर्ग को ऊर्ध्व-स्थायी स्तब्ध बनाया है और सूर्य को आकाश में स्थापित कर दिया है। जो अन्तरिक्ष में रहकर सम्पूर्ण कार्य-कारण भावात्मक रज का निर्माण एवं प्रमाण करता रहता है उस परमानन्द-स्वरूप स्वयंप्रकाश परमात्मा की हम ब्रह्माण्ड-हवि से पूजा करते हैं।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम।६।

(परमात्मा) प्रजापति के द्वारा लोकरक्षा के लिए सृष्ट होने एवं स्थिर किये जाने पर द्युलोक एवं पृथिवी स्थिर भाव से उन्हीं के सम्बन्ध में विचार करने लगे। 'अहो ! हम दोनों का महत्त्व इन प्रजापति से ही है।' इसी से वे अत्यंत देदीप्यमान हुए। क्यों न हो इन्हीं प्रजापति को आधाररूप में प्राप्त करके सूर्य का उदय हुआ और वे द्युलोक तथा पृथिवी में प्रकाशित होते रहते हैं। उस प्रजापति देवता के लिए जो स्वयं

प्रकाश परमानन्दस्वरूप वाङ्मनसागोचर है, हम अपने सर्वविध हवि द्वारा उसकी आराधना करते हैं।

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्। ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम।७

कारणवारि—जिन्हें मूलमन्त्र में आपः कहा गया है, वे सबसे वृहत्महान् हैं क्योंकि उन्होंने अग्नि, आकाशादि सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि करने के लिए प्रजापति को ही अपने गर्भ में धारण किया और सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो गयीं। इसी कारण सम्पूर्ण देवताओं के एवं प्राणियों के प्राण स्वरूप प्रजापति भली भांति प्रकट हुए। ऐसा भी कह सकते हैं कि उन प्रजापति को ही अपने गर्भ में धारण करके कारणवारिरूप जगन्माता विश्व के रूप में स्थित हुईं और उन प्रजापति से ही सबके प्राण रूप वायु की उत्पत्ति हुई। उनके सम्बन्ध में ऐसा भी कहा जा सकता है कि वे सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त होकर स्थित थीं और उन्हीं से एक अद्वितीय प्राणात्मक प्रजापति प्रकट हुआ। ऐसे जगत्पिता सच्चिदानन्दघन प्रजापति देवता को यह विश्वरूप हविष्य अर्पण करके हम उसकी सेवा कर रहे हैं।

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्। यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम।८।

इस सम्पूर्ण नामरूपात्मक प्रपञ्चरूप यज्ञ का निर्माण करने के लिए जब कारणवारिरूप 'आपो माता' ने प्रपञ्चके रूप में वृद्धिशील अत्यन्त दक्ष प्रजापति को अपने गर्भ में धारण किया, तब प्रजापति ने अपनी महिमा से उनके ऊपर पूर्ण दृष्टि

डालो, अर्थात् उनके गर्भ में स्थित होकर अपने को प्रपञ्चरूप से प्रकट किया। वह देवताओं का भी देवता परमेश्वर है। वह सर्वथा-सर्वदा-सर्वत्र एक अद्वितीय ही रहता है। उसी सर्वकारण कारण स्वयं-प्रकाश प्रजापति को परिचर्या के रूप में हम इस विश्वहविका अर्पण करते हैं।

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्यायोवा दिवं सत्यधर्मा जजना।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम।९।

जो पृथिवी का जनक है और जो सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाला सत्य आधार है, जो अन्तरिक्ष एव उसमें रहने वाले लोकों को जन्म देता है और जो महती अदिनी रसमयी कारणवारिका उत्पादक है, उस एक सुखस्वरूप रसमूल प्रजापति को हम अपनी भोगहवि की पूजा अर्पण करते हैं।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयोरयीणाम्।१०।

हेप्रभु हे प्रजापति ! तुमसे अन्य ऐसा दूसरा कोई नहीं है, जो इस सम्पूर्ण विश्व के वर्तमान एवं प्रथम विकार भाजन भूतों में व्याप्त हो सके, अर्थात् तुम्हीं इन सब को स्वीकार करके निर्मित कर सकते हो। तुम्हीं इनमें व्यापक, इनके कारण, इनके ज्ञाता एवं इनके नियन्ता हो। हमने जिस फल की कामना से तुम्हें यह हविर्दान किया है उसका फल हमें प्राप्त हो और हम सम्पूर्ण धनों, साधनों एवं सौभाग्य के स्वामी बनें।

ओम:

ईशावास्यमिदं सर्वं..............संसार में सर्वत्र ही ईश्वर है।
अग्ने नय सुपथा राये.......हे प्रभो ! हमें सद् मार्ग पर ले चलें।
त्वमस्माकं तव स्मस्...हे प्रभो ! तू हमारा है और हम तेरे हैं।
सूर्य्यः कृणोतु भेषजम्...हे सूर्यदेव ! आप हमारी चिकित्सा करें
वाचा वदामि मधुमत्....हे प्रभु ! हमारी वाणी मधुर बोले।
कृत्वा सुकृतो भूत..........सत्कर्म करने से पुण्य प्राप्त होता है।
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्.........सभी संसार को श्रेष्ठ बनाओ।
अक्षैर्मा दीव्यः...........................जुआ कदापि न खेलें।
स्वयं यजस्व...................यज्ञादि शुभ कर्म स्वतः ही करो।
अग्ने वर्चस्विनं कुरू..........हे प्रभो ! मुझे तेजस्वी बनाओ।
तेजोऽसि तेजो मयि धेहि.........हे तेजवान् प्रभु मुझे तेज दो।
असतो मा सद्गमय—हे नाथ मुझे असत्से बचाकर सत् की ओर ले चलें।
तमसो मा ज्योतिर्गमय..............हे अन्तर्यामि मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलें।

भक्त के लक्षण

निरन्तर भगवान के ध्यान में निरत रहने से भक्तों में कुछ विशेषताएं उत्पन्न हो जाती है जो कि इस प्रकार है:—

(१) सम्मान— पने इष्टदेव की मूर्ति को देखकर बारम्बार उसके सम्मुख नत-मस्तक होकर प्रणाम् करता है। ऐसा करने से उसमें निहित अहं की भावना का विनाश हो जाता है, क्योंकि जिसके सम्मुख झुका जाता है, उसे ही हम सम्मान देते हैं और उसके सामने अपने अहं की भावना को भुला देते है। जैसे अर्जुन प्रतिक्षण, प्रत्येक अवस्था में श्री कृष्ण भगवान का सत्कार किया करते थे, इसमें वह तनिक भी भूल न करते थे, इसी से अर्जुन भगवोन की विशेष कृपा के पात्र बने।

(२) बहुमान—समस्त सांसारिक पदार्थों की अपेक्षा स्वेष्टदेव परमात्मा का ही बहुत प्रकार से सत्कार करना 'बहुमान' कहलाता है। भक्त सदैव अपने परिवार आदिके नाम भगवान् के नाम के आधार पर ही रखता है। इससे भक्त में अनेक गुणों का विकास होता है और वह किसी भी बहाने से परमेश्वर की स्मृति में तल्लीन हो जाते हैं। इस प्रकार भक्त बहुत प्रकार से भगवान को प्रामुख्यता देता हुआ उन्हीं के सत्कार में लगा रहता है।

(प्रीति)——भगवान को भक्ति में निरत रहने वाले भक्त के हृदय में भगवान के प्रति अनन्य प्रीति उत्पन्न हो जाता है। जैसे अविवेकी जीवों की विषय-वासनाओं में अनन्य प्रीति होती है; वैसे ही भक्त की स्वेष्टदेव के प्रति प्रेम की पराकाष्ठा हो जाती है।

प्रीति का उदाहरण विदुर और उनकी पत्नी विदुराणी से बढ़कर और क्या हो सकता है कि जब भगवान श्री कृष्णचन्द्र विदुर के घर आए और उन्हें पुकारा तो स्नान करती हुई विदुराणी उनकी आवाज पहिचान कर वस्त्र पहिनना ही भूल गईं और प्रेमातुर बाहर आकर भगवान का सत्कार किया। प्रियतम परमात्मा के दर्शन, श्रवण, स्पर्श कथन आदि से ही भक्त का हृदय पिघल जाता है, यही प्रेम की पराकाष्ठा है, जहाँ जान बूझकर नहीं बल्कि स्वतः ही नियमों का परित्याग हो जाता है और प्रेमी तथा प्रेमास्पद के बीच भेद की स्थिति समाप्त हो जाती है। यथा—

"एक नियम यह प्रेम कौ, नियम सभी मिट जाहिं।
पै जो छाड़ें जानकर, तहाँ प्रेम कछु नाहिं" ॥

अस्तु, प्रेम दिवानी विदुराणी वस्त्रहीन ही भगवान् के चरणारविन्दों से लिपट गई, उसकी यह स्थिति देखकर भगवान् ने अपना पीताम्बर उसे उढ़ा दिया, उसी अवस्था में वह श्रीकृष्ण को अपने घर ले आयी, भगवान् के सत्कार के लिए उसके पास कुछ भी न था तो पानी और केले ही ले आई, लेकिन प्रेम-विह्वलता के कारण वह केले छीलकर तो फेंकती गई और छिलके भगवान् को देती गई। भगवान् तो प्रेम के भूखे हैं, वह बारम्बार उनकी प्रशंसा करते हुए बड़े प्रेम से छिलकों को खाने लगे। वाह रे भगवान् ! जो प्रेम से भक्त की सभी भेंटें स्वीकार कर प्रसन्न रहते हैं।

इस प्रकार भक्त में तीसरा लक्षण है भगवान् के प्रति अनन्य प्रीति की उत्पत्ति होना।
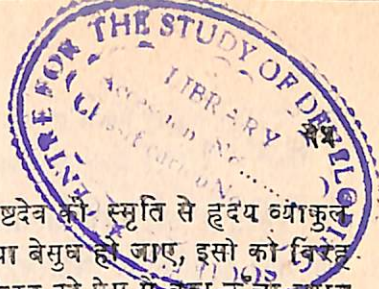
(४) विरह—अपने इष्टदेव की स्मृति से हृदय व्याकुल हो जाय, करुणा से भर जाए या बेसुध हो जाए, इसी को विरह कहते हैं। भक्त कबीर ने तो विरह को प्रेम में बड़ा ऊँचा स्थान दिया है, वह कहते हैं कि—

तात्पर्य वह है कि बिरह की अग्नि ही प्रेमी को प्रेमास्पद परब्रह्म की प्राप्ति के लिए तपाकर खरा बना सकती है, लेकिन ऐसे विरह की स्थिति प्राप्त करना भी कठिन है, जिसमें प्रेमी अपनी सुध-बुध खोकर वियोग अवस्था से व्याकुल हो उठे। कबीर कहते हैं—

"कबीर हाँसे प्रिय न पाइए,
जिन्ह पाया तिन्ह रोय।
हाँसि खेलि जो पिया मिले,
तो को दोहागिन होय॥"

अर्थात्—जिन्होंने भी अपने प्रेमास्पद को पाया है, उन्हें पहले रोना अवश्य पड़ा है, क्योंकि प्रिय से हँसी-हँसी में कभी भेंट नहीं होती है, अगर बिना रोए ही प्रियतम का समागम हो गया है तो उन्हें बाद में रोना पड़ता है, लेकिन ऐसा होता नहीं है, नहीं तो कोई अपने दुर्भाग्य को क्यों कोसता ?

विरहमें तो व्याकुल प्रेमी की दशा ही अनोखी हो जातीहै, कभी वह रोता है, कभी सिसकता है, कभी नाचता है, कभी मूर्छित हो जाता है आदि-आदि अवस्थाओं में वह अपने प्यारे

की स्मृति में इस प्रकार तल्लीन हो जाता है कि उसे कुछ होश ही नहीं रहता। एक महात्मा ने प्रेमी की इस विरहाकुल दशा का बहुत मार्मिक चित्रण किया है—

"प्रभो ! जिस पर तुम हो रीझते, क्या देते यदुवीर ?
रोना, धोना, सिसकना और आहों की जागार ॥"

अर्थात्—वह परमापता परमात्मा जिस किसी भक्त पर रीझता भी है तो उसे रोने, धोने, सिसकने और आहों की हा सम्पत्ति देता है, क्योंकि विरह हा एक ऐसो अवस्था है जिसमें प्रेमी अपने प्यारे को एक क्षण मात्र के लिए भी नहीं भुल सकता है।

श्री उद्धव जब व्रज से लौटकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के पास आए तो गोकुलवासियों की विरह-दशा का वर्णन करते हैं, इसी भाव का रहीमखान ने बहुत सुन्दर ढंग से लिपिबद्ध किया है—

"कह रहीम उत जाय के, गिरधारी से टेर।
गोपी दृग् जल झरन ते, अब ब्रज डूबत फेर॥"

हे कृष्ण ! तुम्हारे विरह में गोपियों के नेत्र-रूपी झरनों से अविरल अश्रु (जल) प्रवाहित हो रहे हैं, एक बार इन्द्र का प्रकोप होने पर तो तुमने ब्रज को डूबने से बचा लिया था अब फिर वही स्थिति बन गई है, तुम शीघ्र ही ब्रजवासियों की रक्षा करो।

प्रेम में विरह की स्थिति प्रभु प्रेम की वृद्धिके लिए ही देते हैं। प्रेम-पुजारिन गोपीयों से भगवान् कहते हैं कि मैं प्रेम करने वाले भक्तों के साथ प्रेम इसलिए नहीं करता हूं, ताकि मुझेप्राप्त करने की उनकी इच्छा अधिकाधिक तीव्र हो जाए, इसीलिए मैं अपने परम भक्तों को विरह ही अधिक देता हूं।

परन्तु विरह की स्थिति में भक्त को अपने विवेक और वैराग्य का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए, वरना उनकी स्थिति श्रीराम के विरह में व्याकुल अयोध्या-वासियों जैसी ही हो जाती है।

इस प्रकार प्रेममें विरह वह स्थितिहै जिसमें साधक अपने साध्य की प्राप्ति के लिए और भी अधिक व्याकुल हो उठता है।

(५) **इतरविचिकित्सा**—अपने इष्टदेव के अतिरिक्त और किसी से भी प्रभावित न होना, इतरविचिकित्सा कहलाता है। जैसे एक भिखारी किसी राजा से धनादि की प्राप्ति की इच्छा से गया, किन्तु वहाँ जाकर देखा कि राजा स्वतः भगवान् से अपने कल्याण के लिए प्रार्थना कर रहा था। प्रार्थना समाप्त होने के बाद राजा ने याचक से याचना करने का कहा, तो याचक ने पूछा आप किससे प्रार्थना कर रहे थे। राजा ने कहा सर्वशक्तिमान जगतपिता परमेश्वर से प्रार्थना कर रहा था कि वह सब प्रकार मेरी रक्षा करे। भिखारी को बड़ा आश्चर्य हुआ और कहने लगा "मँगते से क्या माँगना" अर्थात् जो स्वयं याचक है, उससे क्या याचना करना। मैं भी उसी सर्वशक्तिशाली परमात्मा से ही याचना करूँगा जिससे तुम

मांग रहे थे ताकि—

"जेहि जाचिये याचकता जरि जाहि।"

जिससे एक ही बार मांगने पर जीवन भर के लिए मांगने की क्रिया ही समाप्त हो जाये। इस प्रकार साधक अपने इष्टदेव के अतिरिक्त किसी और के सामने अपना हाथ ही नहीं फैलाता और न किसी से प्रभावित ही होता है, उसकी दृष्टि में तो उसके स्वामी के अतिरिक्त कोई दानवीर ही नहीं होता है।

(६) **महिमख्याति**—भगवान् के नाम और गुणों की महत्ता से स्वतः अवगत होकर औरों को भी उसका अनुभव करना ही महिमख्याति भक्त का लक्षण कहलाता है।

यमराज भी अपने दूतों से यही कहते हैं कि जो भक्त भगवान् के नाम का स्मरण करते हों उनसे दूर ही रहना, क्योंकि भगवान् के स्मरण में महान् शक्ति है, जैसे अनिच्छा से स्वाभाविक स्पर्श किया हुआ अग्नि भी जला देता है, उसी प्रकार दुष्ट हृदय वाले पुरुषों के द्वारा किया हुआ भगवान् के नाम का चिन्तन उनके समस्त पापों का नाश कर देता है।

इस प्रकार अपने इष्टदेव भगवान् की महिमा को प्रकट करना और किसी दूसरे की महिमा से प्रभावित न होना ही महिमख्याति लक्षण कहलाता है।

(७) **तदर्थप्राणस्थान**—अपने इष्टदेव परमात्मा के लिए ही अपने जीवन को समझ कर उसकी रक्षा करना और उन्हीं के लिए प्रत्येक कार्य का सम्पादन करना भक्त का तदर्थप्राणस्थान लक्षण कहलाता है इष्टदेव के स्मरण के बिना

वह एक पल भी नहीं रह सकता, उसे प्रियतम के अभाव में सारा जगत शून्य एवं सारहीन दिखाई देता है। इस स्थिति में भक्त भगवान् से कहता है कि जब तक आपकी दिव्य कथा संसार में रहेगी तब तक मैं आपकी आज्ञा का पालत करता हुआ अपने जीवन को धारण कर निवास करूँगा।

(८) तदीयता—जब भक्त में तदीयता का लक्षण आ जाता है तो वह समस्त सुख एवं उपभोग की सामाग्री को अपने इष्टदेव का प्रसाद समझकर पूर्णरूप से सन्तुष्ट रहता है और उनका उपभोग करता है। इस स्थिति में भक्त किसी भी पदार्थ से ममत्व स्थापित नहीं करता, क्योंकि वह भली भाँति जानताहै कि हम तो उस जादूगर भगवान् के हाथ के पुतले हैं, वह जैसे चाहेगा हमें वैसे ही करना होगा, फिर बीच में विघ्न डालकर हम अपने लिए दुःख एवं असन्तोष के कारण क्यों उपस्थित करें।

इसी भाव से प्रभावित होकर राजा बलिने अपना सर्वास्त्र श्री वामन अवतार भगवान् के चरणारबिन्दों में समर्पित कर दिया था। उन्हें तो इस बात में महान् आनन्द की अनुभूति हो रही थी, क्योंकि—

"तुमको तेरा सौंपता, क्या लागै है मोहि।"

भक्त ने तो यह शरीर आदि भगवान् की थाती समझकर इस की रक्षा का भार और उठाया था, अब वह उसे सौंपकर निश्चिन्त होकर भगवान् की आराधना में एकाग्र हो सकेगा क्योंकि—

खुदा अपने दीवानों की खुद करता है निगरानी।
नया बिस्तर, नया मंजा, नया दाना, नया पानी।

जिस किसी भी भक्त ने अपने आपको भगवान्‌को समर्पित कर तदीयता स्थापित करली है, भक्तवत्सल भगवान् स्वतः उसकी निगरानी करते फिरते है'उनका भक्त दुःखी रहे' यह भगवान् कभी भी सहन नहीं कर सकते हैं।इतिहास इसका साक्षी है कि भक्त की विपत्ति दूर करने को भगवान् नंगे पांव दौड़कर आते हैं।

यदि किसीको आप अपनी घड़ी भेंट करदेंतो फिर आपको उसमें चाबी देने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती, वह स्वतः उसकी देखभाल कर लेता है। इसी प्रकार हे मानव ! तू भी अपने इस शरीर एवं मन को भगवान् के चरणारविन्दों पर भेंट चढ़ा दे, वह स्वतः ही इसकी देखभाल कर लेगा।

अतः तदीयता की स्थितिमें आकर भक्त सभी वस्तुओंको स्वेष्टदेव की समझकर सुख का अनुभव करता हैाउसे अब अपनी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी पड़ती—भगवान् ने भोजन दे दिया तो भी प्रसन्न है न दिया तो भी प्रसन्न है—

पूरे हैं वही मर्द, जो हर हाल में खुश हैं।
हर काम में, हर दाम में, हर चाल में खुश हैं॥

(६) सर्वत्र तद्भाव—जब भक्त स्वेष्टदेव को प्रत्येक स्थल पर प्रगट रूप में देखने लगता है तो यही तद्भाव की स्थिति कहलाती हैं। उसे जड़, चेतन सभी में अपने परमपिता

परमात्मा की सुन्दर भुवनमोहिनी मूर्ति स्पष्ट नजर आती है अर्थात् कण-कण में भगवान् व्याप्त दिखाई देते हैं।

जब प्रह्लाद को हिरण्यकश्यपुने अनेक प्रकार की यातनाऐं देकर उससे भगवान् की भक्तिका त्याग कराने का प्रयत्न किया, किन्तु वह स्वेष्टदेव की भक्ति को त्यागने के लिए किसी भी प्रकार तैयार न हुआ। पिता ने उसकी मृत्यु का अन्तिम उपाय सोचा कि गरम खम्भे में बँधवाकर इसे मार डाला जाय तो प्रहलाद से पूछा कि क्या इस जलते हुए लाल खम्भे में तेरा राम है? प्रहलाद ने कहा।

"तुझ में, मुझ में, खडग-खम्भ में जहां देखो तहँ राम ।।"

मुझे तो प्रत्येक वस्तु में अपना राम ही दिखाई देता, तब भगवान् ने उसी खम्भे से प्रगट होकर अपने भक्त के बचनों को सत्य कर दिया। ऐसे हैं वह भक्त वत्सल भगवान् जो अपने भक्त की वाणी को सत्य करने के लिए जहां कहीं भक्त बुलाता है दौड़ आते हैं।इसी भाव को भगवान् ने स्वयं गीता में कहा है—

"यो माम् पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि, स च मां न प्रणश्यति ।।"

अर्थात् जो परम पिता परमात्माको सब जीवों में औरसब जीवों में परमात्मा को देखता है इसलिए न वह किसी भी जीव का नाश करता है और न भगवान् उसका नाश करते हैं, ऐसा भक्त सर्वत्र एकमात्र अपने इष्टदेव के दर्शन करता हुआ परमपद को प्राप्त होता है।

इस प्रकार सर्वत्र तद्भावसे भगवान्‌को भजने वाला योगी जिस किसी भी सम-विषय परिस्थिति में रहने पर भी एकमात्र अभेद भाव से अपने इष्टदेव की आराधना में ही निरत रहता है।

श्री नारायण स्वामी ने ऐसे भक्त का बहुत सुन्दर चित्रण किया है कि किस प्रकार उसे प्रत्येक वस्तु में अपना प्यारा ही दिखाई देता है—

"नारायण जाके हृदय, सुन्दर श्याम समाय।
फूल पात फल डार में, ताको वही लखाय॥
दर दीवार दर्पण भये, जित पेखों तित तोहि।
काँकर पाथर ठीकरी, भये आरसी मोहि॥
तुलसी मूरत राम की, यों घट रही समाय।
ज्यों मेंहदी के पात में, लाली लखी न जाय॥"

वाह रे भक्त! जिसे सब संसार प्रभुमय ही दिखाई देता है।

(१०) अप्रतिकूलता—जब भक्त अपनी इच्छा को भगवान् की इच्छा में मिलादे और भगवान् की इच्छा को अपनी इच्छा समझ उसकी दी हुई प्रत्येक स्थिति को उचित एवं कल्याणकारी समझकर अपना लेता है तो इसे अप्रतिकूलता का लक्षण कहते हैं।

सच्चा भक्त अपने हृदय में परम प्रेमास्पद भगवान् को विराजमान कर उनकी इच्छा के अनुसार ही समस्त इच्छाएं एवं चेष्टायें करता है। भक्त समस्त दशाओं में अनन्यभाव से भगवान् के चरणारबिन्दों की उपसना में ही तल्लीन रहता है।

भक्ति रस

जब जीवन जीवननाथ के श्री चरणों का आश्रय ग्रहण कर लेता है तो भव रोग से उसी क्षण मुक्ति मिल जाती है। जैसे रेलवे स्टेशन पर पहुँचने तक अपना सामान अपने ऊपर ही होता है किन्तु ट्रेन में बैठने पर सभी सामान सीट के नीचे रख लिया जाता है पुनः सामान का भार ढोना नहीं पड़ता मेरे दयालु प्रभुजो अपने जन को ऐसो हीपवित्रबुद्धि प्रदान करते हैं कि भक्त को जगत की चिन्ता का भार नहीं ढोना पड़ता बल्कि वह भक्त हो नामरस कीर्तनरस, भजनरज, कथारस, परस्पर बोधन रस का आनंदानुभव ही कर रहा है। जगत्-पिता उसका भार वहन करता है मीराजी मेवाड़ छोड़कर कई दिन के पश्चात् वृन्दाबन श्री बांके बिहारीजी के दर्शनों के लिए पहुँचीं प्रभु दर्शन के पश्चात् बंशीवट यमुनातट पर पहुँची भक्त-वत्सल,अकारण करुणा सागरके नामामृतमें मीराजी गोता लगाने लगीं चढ़ा भक्ति का मादा रस, भूल गई क्षुधा पियासा को मगन हो गई—प्रभु के चरणारविन्दों में बैठकर परम दयालु

नारायण को कहाँ चैन था, मीरा की भूख के कारण प्रभु श्याम सुन्दर सरकार के सुन्दर बालक रूप में गले में एक ढोलक बांधी और गली २ ढोलक बजाकर कहने लगे मीरा देवी के दर्शनों के लिए बंशीवट चलें। आगई मेवाड़ की महारानी मीरा हरि-भक्तों को दर्शन देने, लोगों सावधान हो जाओ चली प्रभु दीवानी मीरा के दर्शनों के लिए जब साधारण व्यक्ति के कहने से जनता एकत्रित होकर सिनेमा घरों को भर देती हैं तो परम प्रेमास्पद जगत नियन्ता प्रभु के शब्दों को सुनकर मीराजी के दर्शनों को जो न जाये ऐसा कठोर हृदयी भक्त कौन होगा, लोग फूल, फल, मिष्ठान आदि ले लेकर चलें लागों को परिचय देने के लिए श्याम सुन्दर वहाँ पर तैयार ही खड़े थे। यही है। मीराजी दर्शनोंकालाभ प्राप्त करो जीवन सफल बनाओ मीराजी का ध्यान समाप्त हुआ……प्रभु लोगों को परिचय देने वाले अन्तर्धान हो गये……मीरा के समक्ष जनता ने फल मिष्ठान फूल आदि रख दिये……मीरा महारानी की जय, माता मीरादेवी की जय-जय जय की नाद मीरा ने सुनी तो आश्चर्य चकित होकर कहने लगी आप लोग कौन हैं, लोगों ने उत्तर दिया ब्रज में रहने वाले श्री राधारानी के प्रभु श्याम सुन्दर के दीवाने बस मीरा ने कहा धन्य हूँ मैं जो आप लोगों के दर्शन कर सकी……लोग तो मीराजी की चरणरज ले रहे थे, मीराजी की जय मीरा महारानी की जय के नारे लगा रहे थे—मीराजी ने पूछा अरे लोगो आप लोगों के मेरे नामका कैसे पता चला आप लोग यहाँ तक कैसे आये मुझे भूख लगी। यह आप सबको कैसे ज्ञात हुआ लोगों ने कहा जो सुन्दर सा बालक आपका परिचय गली २ में दे रहा था, उसीकी वाणी में कितना रस था, कितना माधुर्य था, कितना आकर्षण था

मीरा जी जब अपने हाथों से ढोलक बजा कर आप के नाम को स्वामी भक्त नौकर की भाँति ले रहा था और आप का परिचय अपने मुँख से दे रहा था, तब तक बहुतों ने कहा जो अभी हमें यहाँ तक पहुँचा कर गया था, वो तो आप के सभी परिवार से एवम आप का भक्ति सम्बन्धित सभी गाथाओं से परिचित है मीराजी ने कहाँ-कहाँ है। वह सुन्दर बालक कहाँ है, वह मेरा प्रियतम, मुझे उस श्याम सलोने के सिवाय वृन्दाबन में कौन जानता हैं मेरा परिचय और कौन देगा मेरा अपना अन्य कौन है।मीराजी कहते२ रोने लगी गाने लगी "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोई, जाके सिर मोर मुकट मेरे पति सोई—प्यारे—प्यारे"
श्याम सुन्दर नन्द नन्दन है श्री बांके बिहारी मेरे कन्हैया मेरे गिरधर गोपाल......—

आवाज आई मीरा अब विह्वल मत होओ जब तुम मेरा चिन्तन करते हुए जगत की ओर से निश्चिन्त हो गई हो तो अब सभी प्रकार से मैं तुम्हारी चिन्ता करूँगा यही मेरा स्वभाव है जो मेरा बन जाता है मैं उसीका होकर उसका समस्त प्रकार से भार वहन कर रहा हूँ, भक्ति की व्याख्या आगे भक्ति भी बनती है तात्पर्य अनेक जो २ भी पदार्थ है आपके पास उन्हें आप भिन्न प्रिय २ सम्बन्धियों का भाग बना दें शेष जो आप बचे वह अपना आप प्रभु का भाग निश्चय करले—आपने जिसे कार दी है वह कार की सभी प्रकार से देखरेख (चिन्ता) करता है जिसे कोठी दी है, वही सफेदी रिपेयरिंग आदि का ध्यान रखता है, जो जिसे आपने अपने आपको सौंपा है। वह तो परम समर्थ सर्व का सखा सर्व

हितैषी—किन्तु उन्हीं कृपालु का वह वाक्य जो "माम् अवत्या मपि ते तेषु चाऽहम्" न भूलें, तो आपका स्वामी स्वभावतः सर्व का प्रेमी आपका अत्यन्त प्रेमी बन कर आपके चिन्ता और चिन्तन का भी ठेकेदार बन जायेगा। शिशु की परम असमर्थता भी माँ को अत्यन्त प्रिय लगती है। इसी प्रकार भगवान की आह्लादिनी शक्ति जो भक्ति है उसे भी भक्त का पूर्ण समर्पण बहुत ही भाता है। बस भक्ति का कार्य समर्पण और भक्ति माँ का कार्य भक्त को रस प्रदानता-जो शिशु माँ की गोदी में होगा उसे तो अवश्य ही दूध प्राप्त होगा ही किन्तु भाई खिलौने पकड़े हुए माँ की गोदकी उपलब्धि कठिनहै उसे खिलौनेका लोभ (मोह) तो छोड़ना ही पड़ेगा एक बार कुप ने समुद्र से कहा ओ सिन्धुदेव! इतनी नदियां तुम्हारे पास आती है और तुम सभी को अपने में विलीन कर लेते हो किन्तु बस मेरी और तुम्हारी थोड़ी ही दूरी है किन्तु अब तक तुमने मुझे नहीं अपनाया समुद्र ने हँस कर कहा ये नदिया सभी स्थानों को छोड़ कर मेरे पास दौड़ी आती है तो मैं भी भुजा फैला कर इनका स्वागत करता हूँ। किन्तु ए कूप तुमने तो अपने चारों ओर ऊँची २ दिवालें खड़ी की हुई है तुम दिवालें नहीं तोड़ सकते और मेरी ओर बढ़ नहीं सकते तो भाई मेरी हमेशा फैली हुई (लहरें) भुजाएँ तुम्हारा स्वागत कैसे कर सकेंगी कैसे तुम्हें अपना सकेंगी.......ठीक— इसी प्रकार जो भक्त अपने आपको उस परम पिता प्रभु का भाग बना देता है प्रभु की वो आजानु बाहु सदा सर्वदा उसको अपने तक खींच कर लाने स्वागत करने में समर्थ है किन्तु जिनके चारों ओर मत मजहब की दिवालें, बड़प्पन आदि की दिवालें लगी हुई हैं जो परमेश्वर की प्राप्ति जो आरीम है

उसी के प्रति सीमित भावनाओं वाले प्रभु को प्राप्त कर सकने में असमर्थ ही रहेंगे उन्हें अपनी सीमित भावनाएं अवश्य ही छोड़नी पड़ेगी। तबही तो प्रभु के कृपा पात्र बन सकेंगे।

किसी उर्दू के विद्वान ने कितना सुन्दर लिखा है।

जब तुझसे न सुलझें तेरे उलझे उए धन्धे।
भगवान के इन्साफ पै सब छोड़ दे बन्दे॥
वो खुद ही तेरी मुश्किलें आसान करेगा।
जो तू नहीं कर पाया वो भगवान करेगा॥

....

श्रीमद्भागवत् के एकादश स्कन्ध में आता हैं। कायेन वाचा, मनसेन्द्रियैंवा बुद्धयाऽऽत्मना वानुसृत्वभावात: करोभियत्यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत्।

शरीर से मन से वाणी, इन्द्रियों से बुद्धि से क्रिया से बोलने से विचारने सोचने आदि से जानबूझ कर या अनजान में स्वभाव वश से जो भी कुछ कर्म हुआ हैं नारायण-परमेश्वर की सत्ता से हुआ है ऐसा जान कर उन्हीं को अर्पित कर देना चाहिए कर्म के बन्धन से समर्पण (भक्ति देवी) तुम्हें निश्चित छुड़ा देगी.........पिता (परमेश्वर) के कर्म रूपी दण्ड से बचाना और पिता का भी प्रिय बना देना, यह तो मां का कार्य है। बच्चा तो निश्चिन्तता पूर्वक मां की गोद स्वीकार करे मां के अनुकूल हो जाए। शेष सभी कार्य मां का है।

"रसं ह्वदाऽयम् लब्ध्वा आनन्दी भवति"

बस भक्तरूपी बच्चा तो फिर आनन्द से मां की गोद में मुस्करायेगा।

... .

भक्ति और योग

भक्ति रस रूपा है और भोग नैराश्य देने वाले हैं भक्ति प्रारम्भ से परिणाम तक सुख ही सुख आनन्द ही आनन्द, आह्लाद ही आह्लाद, प्रेम ही प्रेम है—और भोग, प्राप्ति में कठिनता, तात्कालिका असंतोष क्रिया के पर में अभिमान और परिणाम में महान रोग अशान्ति दुःख क्लेश केवल पाश्चात्ताप, किन्तु ऐसे निकृष्ट भोगों से बचने का उपाय भी एक मात्र हरि भक्ति ही है। इष्ट में प्रीति सुखस्वरूप आनन्द॰ घन परमेश्वर की प्राप्ति की इच्छा उनके नामाऽमृत का रस उनकी कथाऽमृत का आनन्द उनकी परस्पर में चर्चा की रसा॰ नुभूति यही तो परम कृपालु प्रभु के कृपालु स्वभाव की विशेषता है कि नाम मात्र से ही रस, आनन्द-शान्ति एवम् संतोष के दाता हैं परमेश्वर का रसमय आनन्दमय नाम लेते हुए देह त्याग करने वाला वाह-वाह करते हुए परम कृपालु प्रभु के श्रीचरणों में पुष्पवत् समर्पित कर देता है।

"बको जल चरान् भुंक्ते मंडूका दिञ्च वर्जयत्
तथा यमः सर्वं हन्ता बर्जयेत् राम सेवकान्।

भक्त की मृत्युका का प्रश्न नहीं वह तो अपने परम प्रेमास्पद् सर्व नियन्ता परम कृपालु परमेश्वर समष्टिचेतन में

व्यष्टि को मिलाकर परम लाभ से प्रसन्नता के कारण कह उठता है वाह मेरे स्वामी ! वाह मेरे नाथ ! वाह मेरे परम कृपालु भगवान् तुमने इस जीर्ण शीर्ण वस्त्र को छीनकर मुझ चौरासी लाख प्रकार के वस्त्रों का स्वामी और अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का नायक निज स्वरूप बना लिया है किन्तु दूसरी ओर भागी अपने इस जो कुछ भी बना मालिक बना हुआ है उसे भी हँसते देखकर उफ २ आह-आह रो-रोकर भी काल के हाथों अपने को सौंपना—भक्ति का परिणाम—शान्ति, आनन्द—भोग का परिणाम रोना, दुःख ।

ॐ

चरित्र

भगवत् कृपा ही जीवन का मूल तत्व है। अनेक व्यक्ति चरित्र के नाम का ढिढोरा पीटते हैं कि हम ईश्वर को तो नहीं मानते किन्तु हमारा जीवन बड़ा सुन्दर है—ऐसे व्यक्ति अनेकों के साथ अपने से भी धोखा करते हैं। दूसरा दर्शन आपके जीवन को यथावत् नहीं जान सकता आपके सम्पर्क में निवास करने वाले लोग ही आपके जीवन को यथार्थता को समझ सकते हैं। आप करते क्या हैं। और हृदय में क्या है यह तो आप ही जान सकते हैं या आपसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाला जो रात दिन आपके समीप रहता है वही जान सकता है दूर के दर्शकों को तो निश्चित भांति ही लगेगी। पैर स्पर्श नम्रता का प्रतीक है लेकिन जिसकी दुकान ही जूते की हो तो वह ग्राहक के पैर में जूता पैर पकड़ कर डालेगा.......तो क्या वह विनम्र है।

आगे-आगे प्रभु राम और उनके पीछे-पीछे लक्ष्मणजी जा रहे हैं। पंपापुर का पवित्र सरोवर सामने दीख पड़ा जिसमें

सुन्दर कमल खिले हुए है। बड़ा निर्मल गंभीर जल है भगवान् राम ने एक सुन्दर श्वेत वर्ण वाले एक (बगुले) को देख कर लक्ष्मणजी से कहा—

"पश्य लक्ष्मण पंपायाम् बकः परम धार्मिकः
शनैः शनैः पदं धस्वा जीवानाम् बध शंकया

हे भैया लक्ष्मण यह सुन्दर श्वेत वर्ण वाला बगुला कितना सज्जन है जो कि धीरे-धीरे जल में पैर रख कर चलता है। कि कोई जल का जन्तु पैर के प्रहार से न मर जाये। इसका रूप है। इसका व्यवहार अच्छा है इतना सुनना था कि मछलियां जल में तड़पड़ाने लगी और एक मत्स्य ने कहा हे प्रभु श्रीराम—

"बक किं वर्णते रामो तेनाहं निष्कुली कृता
सहवासी विजानीयात् चरितं सह वासिनाम्

आप बगुले की क्यों प्रशंसा कर रहे हैं। इस बगुले ने तो मेरे सारे कुटुम्ब को ही खा डाला, दूर से देखने वाले को तो ये देवता ही मालूम पड़ता है किंतु क्या २ क्रियायें करता है यह तो समीप रहने वाले लोग ही जान सकते हैं। कोई भी व्यक्ति जिसे ईश्वर का भय नहीं है वह हर क्षण शुभ कर्म में रत रह सकें ऐसा संभव नहीं और कोई यदि बिना ईश्वर की सत्ता स्वीकार किये भी दिन रात शुभ करते हैं तो वो भी निश्चित ही धन्यवाद के पात्र हैं किन्तु उत्तम पक्ष तो वही है कि भगवान् की सत्ता को मानते हुए धर्म अधर्म का विवेक शास्त्रानुकूल ढंग से करते हुए शुभ कर्म (सच्चरित्र) में जो प्रवृत्त है। .... — —

ॐ

चिन्ता–चिन्तन

जगत् के लिए पुनः पुनः चित्त में विचार का आना चिन्ता है और या तो वह रुगात्मिका होगी या दुःखरूपा होगी, किन्तु इसे बचना है दुस्तर ही जो इस जगत की चिंता से बच गया वह जीवन मुक्त है और इसमें फँसा है वही जगत में फसा है—संत पलटू दास जी तो चिंता के बारे में चर्चा करते हुए लिखते हैं कि कोई भी इस अग्नि से नहीं बचा।

"चिन्ता की जरै आग हैं जरै सकल संसार"
जरै सकल संसार जरत राजा भी देखा
बादशाह उमराव जरत हैं सय्यद शेखा !!
सुरनर मुनि सब जरै जती योगी संन्यासी।
पंडित ज्ञानी जरै चतुर कनफटा उदासी ।।
जंगम सेवरा जरै जरैं नागा वैरागी।
कोऊ न बचता भागि लगी है दिन में आगी।।

संत शिरोमणि तुलसीदासजी ने इसे नागिन कहा है—

चिन्ता साँपिन को नहिं खाया ।
को जग जाहि न व्यापी माया ॥

माया का प्रत्यक्ष रूप है चिन्ता, जो इस माया को आश्रय लेता है । उसे ही यह सुलाही है और जो चिन्ता रूपी सर्पिणी को आश्रय देता है उसे यह खाजाती है । संसार की सबसे निकृष्ट माँ है । सर्पिणी कोई भी माँ अपने बच्चे को नहीं खाती बल्कि पालन पोषण करती है किन्तु सर्पिणी जिनको जन्म देती हैं जिन्हें गर्भ में रखती है उन्हें भी खा जाती है—चिन्ता चिता से भी अधिक है—चिन्ता तो मरे हुए को निर्जीव को ही जलाती है किन्तु चिन्ता तो जीवित को चलते फिरते खाते धन सँभालते खेल तमाशा देखते हुए भी जलाती ही रहती है यही इस सर्पिणी को निकृष्टता है चित्त में राग द्वेष अभिनिवेश अस्मिता आदि जो भी अविद्या जन्म है वे जब तक वर्तमान रहेंगे इस चिन्ता रूपी सर्पिणी से बचना कठिन है जैसे सर्पिणी से बचने के लिए जन्मे जयस्य यज्ञान्ते आस्तिक वचनं स्मर ही सरल उपचार है उसी प्रकार चिन्ता रूपी सर्पिणी से बचने के लिए चिन्तन—

"पाये नाम चारू चिन्तामणि उर करते न खसैहौ"

भगवन् नाम का चिन्तन ही ऐसा विलक्षण एवम् सरल है जो हर कार्य करते हुए हर देश में हर काल में हो सकता है—और यह प्रभु नाम चिन्तन चिन्ता रूपी सर्पिणी को भगाता ही नहीं बल्कि गरुड़ बन कर खा जाता है । यह नाम चिन्तन की हीं विशेषता है, अज्ञान हरण करता अस्मिता के दुःख से

बचा देना अभिनिवेश चित देना, राग खो देना, द्वेष को खा जाना यह सभी एक साथ करके परम प्रकाशित हृदय को बनाकर प्रभु स्वरूप में स्वीकार कर देना यह नाम चिन्तन की महिमा संत शिरोमणि तुलसीदासजी अपने जीवन में लिख रहे हैं।

अवधि तो अलप जायें जिया सोच पोच करें मानो
कछु कीजिये तो कहा कहा कीजिये,
वेदन को पार न पुरानन को अन्त कहूँ शास्त्र तो
अनेक चित्र कहा २ दीजिये,
कविन की कला अनेक छन्द के प्रबन्ध बहुत राग तो
रसीले रस कहाँ २ पीजिये
लाखन की एक बात तुलसी दास कहे जात ज्यों लो
तुम जीवो होलो राम नाम लीजिये,

यह नाम ही चारू चिन्तामणि है जो जीव को चिन्ता से मुक्त कर सकती है, अन्य कोई साधन चिन्ता से मुक्ति का नहीं, महाभारत में एक श्लोक आता है।

भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।
चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि प्रवर्धते ॥

चिन्ता जिसके विषय में है उसके निराकरण आदि सम्बंधित बार २ सोचने से दुःख बढ़ता है चिन्ता उद्वेग बढ़ता है घटता नहीं घरेगा तो चिन्ता के विषय भूलने से और भूला जायेगा। भगवन्नाम याद करने से अतः नाम का चिन्तन ही चिन्ता को खा डालने में समर्थ है।

रामनाम

राम नाम रसायन है, इसके वर्णन से रस (शक्ति) आनन्द नहीं आता बल्कि इसके सेवन से रस शक्ति एवम् आनन्द सभी कुछ, सभी कुछ या ? बल्कि जिसका नाम चिन्तन किया जा रहा है। वो स्वत: भी नाम के समक्ष उपस्थित हो जाता है। राम न सकई नाम गुण गाई, नाम में अपार शक्ति है एक बार अकबर के दरबार में सभी सभासद बैठे हुए थे अकबर ने प्रश्न किया कि बताओ हिन्दु धर्भ में क्या विशेषता है थोडी देरी को चुप्पी रही फिर लोग बीरबल की ओर देखने लगे, हिन्दुत्वाभिमानी बीरबल ने कहा संसार ने जितनी भी अच्छी बातें सीखी हैं-वो सब हिन्दु धर्म की ही देन है। अकबर ने कहा हिन्दु धर्म में सुगमता क्या है—बीरबल ने कहा कि बिना तीर्थ, व्रत, तप, त्याग किये बिना भी नाम मात्र से ही

भगवद् प्राप्ति का सरल साधन हिन्दू धर्म की ही देन है, अकबर ने कहा क्या ? नाम जपने मात्र से ही भगवद् प्राप्ति हो जाती है अकबर ने कहा जी जनाब, अकबर ने कहा जलेबी २ बार २ में दुहराने से क्या मुख मीठा हो जाता है बीरबल ने कहा जलेबी जड है वो पुकारने वाले के शब्द—के बारे में कुछ भी नहीं जानती परमात्मा दया सागर —चेतन एवम् भक्त रुचिपालक है, परमदयालु प्रभु—तो नाम के पुकारने वाले की आवाज बड़े हो माधुर्य से श्रवण करते है, उनकी वाञ्छा पूर्ण करते हैं, उन्हें सुख पहुँचाते है अकबर बीच में ही बोल पड़ा यह हमारी समझ से बाहर की बात है कोई=सच्चा उदाहरण हमारे सामने लाओ बीरबल शान्त—एवम् गंभीर स्वांस लेकर कहने लगा अच्छा जो प्रभु चाहेंगें अब तो उन्हीं के नाम की बात है वही संभालेगें......बादशाह ने सोचा बीरबल खिन्न हो गया है........ उसके मन की प्रसन्नता के लिये उसे दरबार से कुछ दिन का अवकाश देना चाहिए........अकबर ने बोलना प्रारम्भ किया बीरबल तुम्हें १५ दिन का अवकाश दिया जाता है तुम खूब सोचो हमे संतोष जनक उत्तर दो......यदि तुमने हमे सतोष करा दिया तो तुम्हें सरकारी खजाने से भारी इनाम दिया जायेगा।

बीरबल को दस दिन हो गये अवकाश करते हुए उसने ग्यारहवे दिन एक सुन्दर वेश्या को अपने यहाँ पर बुलाया सभी बातें उसे समझा दी तुम्हें सात दिन के सात हजार रुपये दिये—जायेगे तुम्हें गाना गाना पड़ेगा किन्तु जो मैं कहूं वेश्या ने स्वीकार कर लिया सात दिन की जितनी भी शरते थी स्वीकृत हो गई—

वेश्या को प्रातः चार बजे खूब गरिष्ठ पदार्थ—खिला दिये गये ६ बजे प्रातः काल वेश्या राज दरबार से जो रास्ता शहर के मध्य में आता था उसी पर बैठाकर कह दिया अकबर अकबर रटो सामान्य स्वर से ताकि लोग भी सुन सकें........जो भी आता देखता एक स्त्री अकबर अकबर नेत्र बन्द किये हुए चिल्ला रही है लोगों ने पूछा देवी तुम कौन हो कहां से आई हो कोई उत्तर नहीं नेत्र खोल कर देखने की बात ही नहीं शहर में दूसरे ही दिन यही चर्चा एक स्त्री अकबर......अकबर रट रही कुछ दूसरी बात बोलती नहीं चाहती नहीं मन्त्रियों से भी लोगों ने कहा किसी का राज दरबार में कोई रिश्तेदार था किसी का कोई सभी ने धीरे २ सुना चर्चा आगे बड़ी अग्नि और वायु की जो गति है, आश्चर्य चकित चाही की वही स्थति है, बात अकबर के कानों में भी पड़ी अकबर ने अपने प्रमुख मन्त्री से कहा किसी कर्मचारी के द्वारा पूछ वालो और यदि वह चाहती है तो सौ दो सौ रुपया भी दिलवादो.......कर्मचारी गया लाख प्रयास किया मैं दरबार से आया हूँ—कौन सुनता है—अकबर-अकबर अकबर-अकबर बस यही ध्वनि देवी के मुख से निकल रही है। दूसरा बड़ा कर्मचारी भेजा गया। इस बार बात हजार रुपये को थी किन्तु कोई असर नहीं केवल अकबर-अकबर.......बादशाह ने मलका से चर्चा की एक अजीब स्त्री है जो मेरा नाम ले रही किसी से भी कुछ लेती नहीं खाती पीती भी कुछ नहीं है। मैंने अनेक राज्य के प्रमुख कार्यकर्त्ता भेजे हैं किन्तु किसी से भी कुछ नहीं चाहती और नाम लगातार मेरा ले रही हैं मुझे अपना कर्तव्य समझ में नहीं आता कि क्या करना चाहिए? मलका ने कहा आप चिन्ता न करें। मेरे

साथ पर्दे का सभी यथावत् प्रबंध हो जाना चाहिए मैं आज स्वयम् जाकर मिलूँगी एवम् जानकारी करूँगी कि क्या बात है। अकबर ने कहा उसे कुछ भी देकर यहा से अलविदा करो— मलका ने स्वीकार कर लिया........आज दिन में अनेक दास दासियों के द्वारा भी मलका ने यही सूचना श्रवण की एक स्त्री जहांपनाह का नाम ले रही है नेत्र बन्द किये बैठी, कुछ खाती पीती भी नहीं है, किसी से भी कुछ नहीं लेती है, मलका की भावना ने और भी विशेष........। दिन को प्रबन्ध हो जाने पर मलका पहुँची और जैसा सुना था वैसा ही जब देखा हाथ जोड़ मलका ने देवी आखिर तुम हो कौन को चाहती हो मेरे पति—मैं मलका हूँ शहनशाह मेरे पति जो तुम कहोगी तुम्हें वही दिलवा दिया जायगा लेकिन प्रश्न ही नहीं उठता कि अकबर शब्द को छोड़ कर अन्य काई वार्तालाप स्वीकार करें मलका (अकबर की पत्नी) हैरान थी अजीब औरत है, आखिर चाहती क्या है, क्या मेरे पति से मिलना चाहती .... मलका लौट आई अकबर के पूछने पर जैसा कुछ बताया अकबर न्याय प्रिय-सम्राट उसे कब सहन था कि बिना कारण जाने-व्यर्थं ही में इस बात को छोड़ दिया जावे- आज मेरे पास राज्य का पर्याप्त कार्य है मैं कल जाऊँगा.. दूसरे दिन अकबर भी अपने मुख्य कायकरताओं के साथ पहुँचे अकबर ने कहा देवी बोलो क्या चाहती हो लेकिन-देवी को अकबर अकबर अकबर कहने से कहाँ छुट्टी बीरबल ने आकर जहांपनाह अकबर को आदाबअर्ज़ किया और कहा हजूर आप यहाँ-कैसे आये अकबर तो उस देवी की ओर देख कर-अस मज्जस में था ही कि यह चाहती की कुछ नहीं और मेरा नाम लेरही है—जब

बीरबल ने पूछा हजूर यहाँ कैसे अकबर ने कहा यह मेरा लगातार ५.६ दिन से नाम ले रही है अतः मुझे यहाँ आना पड़ा—बीरबल ने कहा हजूर जब आप के हुकम में अपने नाम-लेने वाले के प्रति अपार दया है- और आप स्वतः यहाँ चल कर आगये तो बतलाइये कि जो त्रिलोकी के नाथ है अकारण करूणा वरुणालय प्रभु को यहां अपना नाम सुनकर प्रगट होने में बिलम्ब हो एसा कैसे संभव है अकबर चुप थे—

नाम की यही विशेषता है कि वो नामी को आकर्षित करने में समर्थ है,

राम का नाम लेकर जो मर जायेगे।
वो अमर नाम दुनिया में कर जायेगे॥
यह न पूछो कि मर कर किधर जायेगे।
वो जिधर भेंज देंगें उधर जायेगे॥
टूट जाये न माला कहीं प्रेम की।
कीमत ये रतन सब बिखर जायेगे॥
यह मानो न मानो खुशी आप की।
हम मुसाफिर कल अपने घर जायेगे॥

... — ... . — — — ...

प्रेम

हृदयमें जो भगवान्‌के प्रति आकर्षण है वही प्रेम और अन्य
किसी वस्तु भक्ति स्थान आदि के प्रति जो आकर्षण है (भाव
है वह मोह है जिसका परिणाम रोना दुःख आदि है, संसार के
पदार्थ के संयोग से यदि हँसना भी मिलें तो भी उसमें भय
मिश्रित होता है किन्तु भगवत् प्रेम में यदि कोई रोता भी है
तो हृदय शान्त एवम् आनन्दित होता है, अर्जुन का भगवान् के
समक्ष रोना बिषाद योग नाम से प्रसिद्ध ही है मीरा का रोना
क्या अध्यात्म जगत कभी भूल सकता है, सूरदास का रोना
प्रभु को समीप, बुलाकर हाथ गहन की क्रिया सम्पन्न
कराता है।

गोपाङ्गनाए तो भगवान् श्री कृष्ण के प्रेम की आचार्य
ही है।

असुन्दरः सुन्दर शेखरो वा।
गुणैर्विहीनो गुणिनाम वरोवा॥
द्वेषि मयि स्यात्—करूणाम्बुधिर्वा,।
कृष्णस्य एवाध गतिममास्ति॥

गोपियाँ कहती है हमारे प्रिय हम श्याम सुन्दर चाहें सौन्दर्य

प्रतिमा चाहें वे कुरूप हैं चाहे हमारे प्यारे श्याम सुन्दर चाहे गुणों की मूर्त्ति हो या अवगुणों के भंडार हो हमारे प्यारे श्याम सुन्दर चाहे हमसे प्रेम कि समुद्र दया के आगार बनकर मिलें या श्री श्याम सुन्दर हमसे-द्वेषकरें किन्तु हर प्रकार से हमारी गति तो वे ही हैं। यहीं तो प्रेम की बिशेषता है वह अपने प्रियतम को, नही छोड़ सकता, यदि प्रेमास्पद में कोई दोष दिखलाई दें तो प्रेमी सेवा के द्वारा अधिक प्रेम का परिचय देकर उस दोष को निकालना चाहता अपने प्रियतम को छोड़ने की कल्पना भी उसके मन में कभी नहीं उठती बल्कि अधिक रूप से ही आकर्षण प्रियतम प्रेमास्पद,के प्रति उत्पन्न होता है। यदि वह शीघ्र प्राप्त होते है, एसा प्रेमी को पता लगे तो वह उत्साह पूर्वक प्रेमास्पद की ओर बढता है, और यदि प्रेमी को एसा ज्ञात हो कि भगवत् प्राप्ति तो बड़ी भारी दुर्लभ है तो भी प्रेमी आगे बढता ठहरना नहीं चाहता की ऐसे दुर्लभ की ओर तो निरन्तर बढकर ही पूरा पड़ सकता है; परम प्रेमास्पद श्री भगवान् की प्रेम मग्ना मीरा बोलती है, कि मेरी स्थिति को बिना जाने ही लोग मुझे पागल कहते हैं—

हेरी मैं तो प्रेम दिवानी मेरो दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विध सोवन होय।
गगन मंडल में सेज पिया की किस विध मिलनो होय॥
घायल की गति घायल जाने, की जिन घायल होय।
जौहर की गति जौहरि जाने, कि जिन जौहर होय॥

दरद की मारी बन बन डोलू' बैद मिला नहि कोय।
मीरा की तब पीर मिटै जब बैद सँवरिया होय॥

श्रीभगवत रसिकजी कहते हैं—

अरबरात मिलवे को निसि दिन,
मिलेइ रहत मनु कबहुं मिले ना।
भगवतरसिक रसिक की बातैं,
रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना॥

यही अनुभव मीरा का भी है—

माईरी, मैं तो गोविद सों अटकी।
चकित भए ये दृग दोउ मेरे, लखि सोभा नटकी॥
सोभा अंग अंग प्रति भूषन वनमाला लटकी।
ललित अलक कर वांसुरी सो है, दुति दामिनि पटकी॥
रमित भई हौं साँवरे के संग, लोग कहैं भटकी।
छुटी लाज कुलकानि लोक डर, रहौं न घर हटकी॥
मीरा प्रभु के संग फिरै अब कुंज कुंज लटकी।
बिना गोपाललाल री सजनी को जानै घटकी॥

मेरे हृदय की बात तो मेरे प्रियतम श्याम सुन्दर ही जानते है, मेरा उनका अनन्य सम्बन्ध है। मैं और मेरे प्रियतम प्रभु एक ही है। भक्त अपने प्रेम का उपहार भगवान के श्री चरणों में ही समर्पित करता है। वह भोजन करता है तो

विचारते हुए कि भोजन से शरीर स्वस्थ रहेगा तो प्रेमास्पद प्रभु के भजन में उनके चिन्तन में शरीर रोग आदि के द्वारा बाधक नही बनेगा बल्कि साधक बनेगा प्रेमी वस्त्र पहनता है प्रेमास्पद को रिझाने के लिए प्रेमी की प्रत्येक क्रिया प्रेमास्पद की इच्छानुकूल उनकी प्रसन्नता के लिए ही होती है। जिस समय भगवान् राम वन से लौटे तो हनुमानजी एवम् अनेक बन्दर और रीछ भी भगवान् राम के साथ अवध में आये—वशिष्ठजी की आज्ञानुसार राज तिलक की तैयारी होने लगी। हनुमानजी वशिष्ठजी की सेवा में बैठे हुए समस्त प्रकार की तैयारी कर रहे हैं। किन्तु अभी तक भगवती जानकी यज्ञ मंडप में नहीं पहुँची। वशिष्ठजी ने आज्ञा दी जानकीजी को बुलाओ हनुमानजी गये तो देखा माता वस्त्राभूषण पहिन कर तैयार है। कज्जल लगा रही है हनुमानजी चुप थे—भगवती जानकी जी ने तुरन्त थोड़ा सिन्दूर लिया और माँग में लगाया और राज तिलक के कार्य को पूर्ण कराने को यज्ञ मडप में चल दी पीछे २ हनुमान चल रहे थे हनुमानजी से भला इतनी चुप्पी कहाँ साधने लगी थी, कहा माँ सब कुछ तो ठीक किन्तु यह लाल सिन्दूर बीच में क्यों लगाया है। जानकीजी ने कहा—हनुमान यह सुहाग चिन्ह है। इसी को देख कर भगवान् राम अधिक प्रसन्न होते हैं। हनुमानजी ने बड़े ध्यान से बात सुनी माँ को मडप में पहुँचाया और तुरन्त ही उठकर माँ जानकी के शृंगार कक्ष में चले गये और सिंदूर समस्त शरीर पर लगा कर पुनः यज्ञ मंडप में आकर बैठे वशिष्ठजी ने कहा हनुमान... हाँ भगवन् जब वशिष्ठजी ने देखा नीचे से ऊपर तक सिन्दूर हो सिन्दूर वशिष्ठजी ने कहा यह सब क्या… हनुमानजी लगे

भगवती माँ जानकी की ओर देखने कि बता दो न माँ ? भगवती माँ जानकी ने सारी बात बताई कि हनुमान के सिंदूर लगाने का कारण मुझसे सुहाग चिन्ह के बारे में पूछना और मैंने कहा था कि भगवान इसी सिंदूर के कारण मुझसे प्यार करते हैं। बस महाभावुक हनुमान प्रभु की प्रसन्नता के लिये ही समस्त शरीर में सिन्दूर लगा कर आ गये हैं। भक्त वत्सल प्रभु ने उठकर हनुमान को हृदय से लगा लिया। प्यारे हनुमान तुम्हारे हृदय के प्रेम ने मुझे बाँध लिया है। माता यशोदा एक बार श्री कृष्ण को बांधने के लिये रस्सी ले आयी। और लगी भगवान कृष्ण को बांधने के लिये। जिन प्रभु को मुनि जन कोई भी नहीं बांध सकते उन्हें भोली माँ बांधना चाहती हैं, लेकिन उन दयालु कोभी बंधने में क्या संकोच। परन्तु फिर भी लीला दिखाने लगे। जब माता यशोदा बांधने लगती रस्सी दो अगुली छोटी हो जाती। माता ने बड़ा प्रयास किया, किन्तु न बांध सकी। दूर से नारद ने देखा और कहने लगे कि आपको चाहे कुछ भी करना आता हो, परन्तु बच्चा बनना नहीं आता है। भगवान ने तुनकाते हुये कहा क्यों। नारद ने कहा कि यह कौतुक माँ को दिखाने की क्या जरूरत है। भगवान बोले कौतुक तो मैं नहीं कर रहा माता के हाथों में है। इनके हाथों में आते ही रस्सी छोटी हो जाती है मैं क्या करूँ। नारद ने यशोदा से कहा—कि माता तो भोली-भाली है वे भला कौतुक करना क्या जानेगी। भगवान बोले—कि जिन माँ के हाथों में आने पर मैं त्रिलोकी नाथ छोटा हो गया। अगर उन माँ के हाथों में रस्सी छोटी हो जाये तो इसमें क्या आश्चर्य की बात है। प्रेम की यही विलक्षण महिमा है

कि वो महान को छोटा बना कर हृदय से समीप करने की समर्थ रखता है। प्रेम में नियमों का अभाव होने पर भी उसके सात नियम बड़े ही प्रसिद्ध हैं। प्रेम किसी परिस्थिति में भी घटता नहीं है। प्रेमास्पद के प्रति रूक्षता नहीं आती है। प्रेम चतुर्दशी के चन्द्रमा की तरह पूर्ण होने पर भी अतृप्त ही रहता है। प्रेम में भय नहीं होता, क्योंकि जिससे हमें भय होता है उससे हम प्रेम नहीं कर सकते। चूंकि प्रेम और भय एक हृदय में निवास नहीं कर सकते। प्रेमास्पद के दोष देखने पर घृणा नहीं सेवा भाव जागृत होता है। प्रेम देरी, दूरी और पर्दा को मिटाता है। प्रेम, प्रेमास्पद और प्रेमी सब एक हो जाते हैं।

आशिक माशूक होगया इश्क कहा पै सोय।
दादू उस माशूक का अल्लाह आशिक होय॥

यह प्रेम रसायन है। यह अनुभवगम्य है—

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि हरे तवालोकनमन्तरेण।
अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो हा हन्त हा हन्त कथं नयामि॥

'श्रीहरे! अनाथनाथ! करुणासिन्धो! आपके दर्शन के बिना इन अभागे दिनों को हाय! हाय! मैं कैसे बिताऊँ?'

इस प्रकार पुकारता, क्रन्दन करता भक्त जब व्याकुल हो उठता है, तब भगवान उसके समक्ष आये बिना रह नहीं पाते हैं।

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वाऽऽदौ स्वयमेव स्फुरत्यदाः॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

अतः श्रीकृष्ण का नाम-गुणादि इन्द्रियों के द्वारा मनुष्य प्रयत्न से ग्र ह्य नहीं है। जब मनुष्य भगवान का नाम लेना चाहता है, तब उसकी जिह्वा पर नामावतार होता है।

नामचिन्तामणिः कृश्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥
(पद्मपुराण)

श्रीकृष्ण नाम तो चिन्तामणि है। वह चिदानन्दघन श्रीकृष्ण को साक्षात् रसमूर्ति है। जसे रूप श्रीकृष्ण हैं, वैसे नाम भी श्रीकृष्ण है।

यह कृ मैं जो है यह काँटा है यही भक्त के हृदय को खींच लेता है। संत ज्ञानेश्वर लिखते हैं कि—

जिस प्राणीं में भगवान् की भक्ति न हो, वह धिक्कार का ही पात्र होता है क्योंकि इस प्रकार जीवित रहने वाले मनुष्यों और पृथ्वीतल पर पड़े हुए पत्थरों में अन्तर ही क्या है? जिस प्रकार कटीले थूहड़ वृक्ष को छाया बुद्धिमान् लोग जानबूझ कर बचा जाते हैं और उसकी छाया में नहीं बैठते, उसी प्रकार पुण्य भी अभक्तको बचा जाते हैं—उसके पास नहीं जाते। नीम का पेड़ चाहे निबौरी से भरकर बिलकुल झुक ही क्यों न जाय, पर फिर भी उस पर केवल कौवे ही आनन्द करते हैं। इसी प्रकार भक्ति-हीन पुरुष चाहे बहुत अधिक सम्पन्न और शक्तिशाली क्यों न हो जाय, परन्तु फिर भी वह केवल दोषों का ही विस्तार करता है। यदि षट्रस भोजन किसी ठीकरे में परोसकर चौराहे पर रख दिया जाय तो उससे

कुत्तों का खौरा रोग ही बढ़ता है (उसे खाकर कुत्ते खौरहे हो जाते हैं) ।

इसी प्रकार भक्ति-हीन पुरुष का जीवन भी होता है। प्रभु भजन के बिना जीवन का महत्त्व ही क्या है वही बुद्धिमान् जिसने इस विनाशी देह से अविनाशी प्रभु का सम्बंध जोड़ दिया है अत्यन्त करुणा सागर प्रभु की कृपा का जिसने अनुभव नहीं किया उसने जीवन में सभी कुछ करने पर अपने साथ धोखा ही किया है। अतः इस मानव जीवन में परमेश्वर के अनुराग को प्राप्त करके ही जीवन को सफल समझना चाहिए इससे पूर्व जीवन की सफलता नहीं है। वह प्रेम पूर्ण होने पर भी अतृप्त ही है, एवम् अनुभव का विषय है, विधापतिजी लिखते हैं।

सखिकी पूछसि अनुभव मोय !
सेहो पिरीत अनुराग बखानत, तिले-तिले नूतन होय ।
जनम अवधि हम रूप निहारनु नयन न तिरपति भेल ।
सेहो मधुर बोल श्रवनहिं सुनल श्रुति पथे परश न गेल ।
कत मधु यामिनिये रभसे गमा ओल न बुझल कैसन केल ।
लाख-लाख युग हिय-हिय राखल तइयो हिया जुड़ल न गेल

कत विदग्ध जन रस अनु-मोदइ अनुभव काहु न देखि
भनइ विद्यापति हृदय जुड़ाइत मिलय कोटि में एक।

मीराबी अपने प्रियतम गोपालजी के लिए लिखती हैं कि उन्हीं प्रभु को अपना सर्वस्व बनाना चाहिए।

ऐसे वर कूं के बरूं, जो जणमे औ मर जाय।
बर बरिये गोपाल जू, म्हारो चुडलो अमर हो जाय॥

— — — — — — —

भक्त रुचि पालक

मैं नित भक्तन हाथ बिकाऊ, आठो याम हृदय मैं राखूं
पलक नहिं बिसराऊं ।
कल न परत बैकुण्ठ बसत मोहि योगिन हृदय न समाऊं ॥
जहाँ मम भगत प्रेमयुत गावे तहाँ बसत सुख पाऊँ ।
भक्त की जैसो रुचि देखूं तैसो ही वेष बनाऊं ॥
टारो अपने वचन भक्त लगि, तिनके वचन निभाऊँ ।

परम कृपालु प्रभु अपने से अपने जन का विशेष ध्यान एवम् विशेष सम्मान रखते हैं, यही उनकी कृपालुता के स्वभाव की विशेषता है किन्तु भक्त उन्हें अपना सर्वस्व समर्पण कर दें। नारदजी की इच्छा है कि भक्त वत्सल भगवान से

चलकर विवाह के लिए रूप की याचना करूँ। नारद कामना के वशीभूत हो गये किन्तु भगवान को नहीं भूले और भगवान से ही अपने सुन्दर रूप की याचना की तैयारी की। भगवान भक्त रुचि पालक हैं किन्तु जैसे माँ अपने बच्चे की इच्छा को पूर्ण भी करना चाहती है किन्तु कभी भी उसके हित को नहीं भूलती। ठीक इसी प्रकार से दीन बन्धु भक्त वत्सल प्रभु ने नारद की हित सहित इच्छा पूर्ण की। उसे बन्दर का स्वरूप बना दिया। भगवान ने विचारा कि इस समय थोड़ी देर के लिये बन्दर बनाना इसको जीवन भर बन्दर बनने से बचा देना है।

नारि विवश नर सकल गोसांई।
नाचहिं नर मरकट की नाई॥

भगवान की यह प्रतिज्ञा है कि जिमि बालकहिं राखि महतारि, यदि छोटा बच्चा सर्प, अग्नि आदि को सुन्दर समझ कर पकड़ना चाहे तो माँ उसे पकड़ने नही देती।

माँ उसकी इच्छा की पूर्ति तो करती है, किन्तु उसका हित, अनहित नहीं भूलती। ठीक उसी प्रकार से परम कृपालु भगवान भी।

नारद की रखवाली करने का कारण नारद के परम आश्रय का स्थान भगवान और प्रतापभानु के परम आश्रय का स्थान कपट मुनि। राजा प्रतापभानु चक्रवती सम्राट बनने के साथ-साथ अमर भी बनना चाहता है। किन्तु भगवान

का आश्रय नहीं चाहता। परिणाम महादुख, घोर कष्ट, जब बचाने वाले भगवान साथ न हो फिर कल्याण का प्रश्न ही नहीं उठता। भक्त किसी भी प्रकार की इच्छा करता हुआ जब पूर्ति का स्थान भगवान को समझता है तब भी आर्शति भक्तिरना सिद्ध होता है।

ध्रुव सगलानि जपयो हरि नाऊ।
पायो अचल अनुपम ठाँऊ॥

ध्रुव ने राज्य से, पिता से दुखित होकर भगवान नारायण का भजन प्रारम्भ किया, किन्तु परिणाम ध्रुव ने निश्कामि भक्त बन कर परमात्मा की प्राप्ति कर ली, क्योंकि प्रभु नाम प्रकाश है। जगत का मोह अन्धकार है। जो भगवन नाम रूपी प्रकाश को अपने हृदय में निवास देगा, परम कृपालु भगवान उसे जगत के जजाल दुःख कपट, जन्म-मरण का चक्र सबसे बचा कर अपने स्वरूप में मिला लेते हैं। यही उनकी प्रतिज्ञा है। भक्त की इच्छा है परम सुख की प्राप्ति और परम सुख को प्राप्ति का एक मात्र स्थान है भक्त वत्सल भगवान्! जीव (भक्त) को परम इच्छा है दुःखों को अत्यन्त निर्वति और दुःखों की निर्वति का एक मात्र स्थान है परम कृपालु भक्त वत्सल भगवान्।

सूरदासजी ने कहा है—

सोइ कछु कीजै दीनदयाल!
जातैं जन छन चरन न छाँड़ै,

करुना-सागर, भक्त-रसाल ॥
इंद्री अजित, बुद्धि बिषयारत,
मन की दिन-दिन उलटी चाल।
काम-क्रोध-मद-लोभ-महाभय,
अह-निसि नाथ, रहत बेहाल ॥
जोग-जुगति, जप-तप, तीरथ-व्रत,
इन मैं एकौ अंक न भाल।
कहा करौं, किहिं भांति रिझावौं:
हौं तुम कौ सुन्दर नँदलाल ॥
सुनि समरथ, सरबज्ञ, कृपानिधि,
असरन-सरन, हरन जग-जाल।
कृपानिधान, सूरकी यह गति,
कासौं कहै कृपन इहिं काल ॥

भक्त अपने अहम को प्रभु के चरणों में निवेदन कर देता है और अपनी इच्छा को प्रभु की इच्छा में मिला देता है।

मैं निज भक्तन हाथ बिकाऊँ।
आठों याम हृदय में राखौं, पल भर नहीं विसराऊँ।
कल व परत बैकुण्ठ बसत मोहिं, योगिन मतन समाऊँ।
जहँ मम भक्त प्रेमयुत्त गावें, तहां बसत सुख पाऊँ।

भक्तन की जैसी रुचि देखी, वैसोहि वेष बनाऊँ।
टारों अपने बचन भक्ति लग, तिनके वचन निभाऊँ।
ऊँच नीच सब काज भक्त के, निजकर सकल मनाऊँ।
पग धोऊँ रथ हांकौ मांजौं, वासन छानि छवाऊँ।
मांगौ नाहि दाम कछु तिनतें, नहिं कछु तिनहिं सताऊँ।
प्रेम सहित जल पत्र पुष्प फल, जो देवे सो खाऊँ।
निज सर्वस्व भक्त को सौपौं, अपनो स्वत्व भुलाऊँ।
भक्त कहै सोई करो निरन्तर, वेचे तोविक जाऊँ।

भगवान का यह नियम है कि भक्त की हितकारी इच्छा पूरी करते हैं और भक्त अपनी निजी कोई इच्छा नहीं रखता है बलिक भगवान के नाम में हर परिस्थति में मग्न रहता है।

जिस हाल में जिस देश में जिस वेश में रहो,
राधा रमण, राधा रमण, राधा रमण कहो।
जिस काम में जिस धाम में जिस गाँव में रहो,
राधा रमण, राधा रमण, राधा रमण, कहो।
जिस संग में जिस रंग में जिस ढंग मे रहो,
राधा रमण, राधा रमण, राधा रमण, कहो।
जिस भोग में जिस योग में जिस रोग में रहो
राधा रमण, राधा रमण, राधा रमण, कहो

भक्त परिस्थिति को अनुकूल नही करता, बल्कि हर परिस्थिति में भगवान को देखता है।

बृज बन की लताओं में, घनश्याम तुम्हें देखूँ,
जमुना का किनारा हो, जंगल का नजारा हो,
बस मुरली बजाते ही, घनश्याम तुम्हें देखूँ।
सन्धया या सवेरा हो, दिन हो या अन्धेरा हो,
सो ही जाऊँ तो सपने में घनश्याम तुम्हें देखूँ।
बृज बन की लताओं में, घनश्याम तुम्हें देखूँ।
भवसिन्धु में, जब भगवन नैया मेरी डगमग हो
पतवार लिये कर मैं घनश्याम तुम्हें देखूँ,
बृज बन की लताओं में तुम्हें देखूँ

एक सन्त बैठे तो पास में एक कुत्ता बैठा हुआ था। किसी नास्तिक आदमी ने आकर महात्मा से मजाक किया। महाराज यह कुत्ता अच्छा है या आप। सन्त ने कहा भैया जैसे ये कुत्ता अपने मालिक को सफेद कपड़े, लाल कपड़े, रंग बिरंगे कपड़ों में, दिन में, रात में, सुबह, शाम कम्बल ओढ़े हुये, सूट पहने हुये हर वेष में पहचान लेता है। यदि मालिक को सुख में, दुख में, हानि में, लाभ, में जय में, पराजय में, शीत में, उष्ण में, सम्मान में, अपमान में हर रूप में पहचान लूँ तो मैं अच्छा नहीं तो यह कुत्ता अच्छा।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्तति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न् प्रणश्यति॥

भगवान ने गीता में कहा अर्जुन:—

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता है, क्योंकि वह मेरे में एकी भाव से स्थित है।

जिस प्रकार एक ही चतुर बहुरूपिया नाना प्रकार के वेष धारण करके आता है और जो उस बहुरूपिये से और उसकी बोल-चाल आदि से परिचित है, वह सभी रूपों में उसे पहचान लेता है, वैसी ही समस्त जगत में जितने भी रूप है, इसी से उनको भगवान से भिन्न समझकर उनसे डरते-सकुचाते हैं तथा इनकी सेवा नहीं करना चाहते, जो समस्त जगत के सब प्राणियों में उनको पहचान लेते हैं, वे चाहे वेष-भेद के कारण बाहर से व्यवहार में भेद रक्खे परन्तु हृदय से तो उनकी पूजा ही करते हैं। हमारे पिता या प्रियतम बन्धु किसी भी रूप में आवें यदि हम उन्हें पहचान लेते हैं तो फिर क्या उनके सेवा सत्कार में कुछ त्रुटि रखते हैं ? इसलिये गोस्वामीतुलसीदास जी महाराज ने कहा है:—

सोय राममय सब जग जानी। करऊँ प्रणाम जोर जुग पानी ॥

.... — .... — ....

कृपा

परम कृपालु प्रभु की स्मृति ही कृपा है। प्रभु की ओर से यदि पढ़ा जाय तो दया और जीव की ओर से पढ़ा जाय तो याद—

तुलसी दास जी महाराज अपनी पवित्र भावना को प्रगट करते हुए कहते हैं हे दीनबन्धु भगवान् मेरा जीवन तो चला गया वह तो व्यर्थ ही था। जीवन तो वही है जो आपकी याद में—

ऐसहिं जनम समूह सिराने।
प्राणनाथ रघुनाथसे प्रभु तजि सेवत चरण बिराने ॥
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलिमल साने।
सूखत बदन प्रसंसत तिन कहुँ हरिते अधिक करि माने ॥
सुख हित कोटि उपाय निरन्तर करत न पाँय पिराने।
सदा मलीन पंथके जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिराने ॥

यह दीनता दूरि करिबे कहँ अमित जतन उर आनै।
तुलसी चित चिन्ता न मिटै बिनु चिन्तामणि पहिचानै॥

प्रभु नाम चिन्ता मणि है इसके बिना चिन्ता सभी को जलाती रहती है, एक मस्त फकीर लिखते हैं कि चिन्ता की अग्नि ने किसी को नहीं छोड़ा।

चिन्ता की लगी आग हैं जरै सकल संसार।
जरै सकल संसार जरत निरपति को देखा,
बादशाह उमराव जरत हैं सय्यद शेखा।
सुर नर मुनि सब जरैं जती जोगी संन्यासी,
पण्डित ज्ञानी चतुर जरैं कलफटा उदासी।
जंगम सेवरा जरैं जरैं नागा वैरागी,
कोउ न बचते भागि दुपहरे लागी आगी।

दिन में जोर से आग लग रही है किन्तु कोई भी इस अग्नि से बचकर भागना नहीं चाहता बल्कि धीरे २ आगे ही बढ़ते दुःखी होते हुए भी आगे बढ़ने की इच्छा रखते हैं, कोई आपका कृपा पात्र ही इस चिन्ता की अग्नि से बच सकता है। जब वह आपके पवित्र नाम के चिन्तन में लग जायगा तब चिन्ता बिचारी स्वतः ही पीछा छोड़कर भाग जायगी काम क्रोध लोभ मोह अहंकार रोकने पर भी नहीं रुक सकेंगे

एक सन्त के शिष्य एक सेठ ने कई बार अपने
गुरुदेव से कहा महाराज मेरे मकान में पांच किरायेदारों ने
अपना कब्जा कर लिया है छोड़ कर नहीं जाते मुझे दबाते
हैं तंग करते हैं सन्त के पास उनकी परम श्रेष्ठ सेवक
एक कोतवाल भी उसी नगर में बदल कर आगये सन्त
से उस कोतवाल ने कहा कि हमें मकान की जरूरत है सन्त
ने सेठ से कहा उसने कहा महाराज मैं तो पहले ही
किरायेदारों से तंग हूँ सन्त ने कहा वो तुम्हारे रखे हुए
किरायेदार हैं यह हमारे वाले से तुम्हें कभी भी कष्ट
नहीं होगा—

कोतवाल का सामान जब सेठ के मकान पर कुली
लोग लेकर पहुँचे तो यारों ने पूछा किस का सामान है
कुलियों ने कहा कोतवाल साहब का सामान है वो अब
इसी मकान में आकर रहेंगे। चोरों ने दुःखी मन से कहा
भाई अगर कोतवाल साहब जिनका तुम नाम ले रहे हो
यदि वो यहाँ पर आवेंगे तब हमारा यहाँ पर रहना ठीक
नहीं चोरों ने अपना सामान उठाया और जाने लगे मकान
मालिक ने कहा रुको कल चले जाना चोरों ने कहा कि अब
हम नहीं रुक सकते ठीक इसी प्रकार जीव रूपी सेठ ने
काम-क्रोध लोभ मोह अहंकार रूपी चोरों को हृदय रूपी
मकान किराये पर दिया हुआ है। वो इस जीव को बहुत
तंग करता है। किन्तु गुरु रूपी सेठ जब भगवान रूपी कोत-
वाल को इसके हृदयमें बुलवाते। तब नाम मात्र से ही ये विकार
रूपी चोर भाग जाते हैं। यही भगवन् नाम की महिमा

जिसके स्मरण मात्र से ही पाप ताप निवृत हो जाते है। हे प्रभु मुझे वह हृदय प्रदान करो जिसमें आपका ही निवास हो।

मुझे वह दिल प्रभु दे दे कि जिसमें प्यार तेरा हो।
जबां वह दे जो करती हर समय इजहार तेरा हो॥
मुझे वह बख्श दे आंखें जिन्हें हो जुस्तजू तेरी।
कि जर्रे जर्रे में मुझ को फकत दीदार हो॥
मुझे संगत अगर देना तो देना अपने प्यारों की।
कि जिन को हर समय विश्वास और इतवार की॥
मेरा साथी जमाने में बनाना उसको मनमोहन।
दया हो जिसके दिल में और सेवा दार तेरा हो॥
इन आँखों से लगता ही फिरूँ मैं चरण रज उसकी।
चमन निष्काम जो करता सदा प्रचार तेरा हो॥

भक्त की हर समय यही इच्छा है कि वह परम कृपालु प्रभु के नाम को न भूलें वह मधुर से मधुर जो भगवान् का मगलमय नाम है उसी में अपने आपको लय करदें—कलियुग में तो नाम का परम आश्रय है।

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मङ्गलेभ्योऽपि मङ्गलम्।
पावनं पावनेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम्॥ १॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मायामयं जगत्।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं हरेर्नामैव केवलम् ॥ २ ॥
सगुरुःसपिता चापि सा माता बान्धवोऽपि सः ।
शिक्षयेच्चेत्सदा स्मर्तुं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ३ ॥
निःश्वासे न हि विश्वासःकदा रुद्धो भविष्यति ।
कीर्तनीयमतो बाल्याद्धरेर्नामैव केवलम् ॥ ४ ॥
हरिः सदा वसेत्तत्र यत्र भागवता जनाः ।
गायन्ति भक्तिभावेन हरेर्नामैव केवलम् ॥ ५ ॥
अहो दुःख महादुःखं दुःखाद् दुःखवरं यतः ।
काचार्थं विस्मृतं रत्नं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ६ ॥
दीयतां दीयतां कर्णो नीयतां नीयतां वचः ।
गीयतां गीयतां नित्यं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ७ ॥
तृणी कृत्य जगत्सर्वं राजते सकलोपरि ।
चिदानन्दमयं शुद्धं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ८ ॥

प्रभु नाम ही आश्रय है कलियुग में—संत तुलसीदासजी लिखते हैं—

कलियुग केवल नाम अधारा
सुमरि सुमरि नर उतरहि पारा

प्रभु नाम के स्मरण मात्र से ही भवरोग समाप्त हो जाते हैं। व्यक्ति कलियुग के प्रभाव से जो प्रभु के सभी गुणों को भूला हुआ है एवम् जगत के भोगों के समक्ष दीन हुआ है—

इसे जीवन में कभी भी उस पूर्ण प्रभु के आश्रय के बिना पूर्णता नहीं प्राप्त होगी। जो विषय (पदार्थ) स्वतः ही अपूण है भला उनमें पूर्णता कैसी ? पूर्ण का सहारा ही पूर्ण बनायेगा, पूर्ण में लय करेगा।

ॐ पूर्णमदःपूर्णमिदं पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवा वशिष्यते ।।

अर्थ—"वह परब्रह्म परमात्मा सर्व प्रकार पूर्ण है और यह विश्व भी पूर्ण हो है। उस पूर्ण से यह पूर्ण प्रकट हुआ है। पूर्ण से पूर्ण को निकाल लेने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

उस पूर्ण परमेश्वर की भक्ति ही उससे तादात्म्य कराने में समर्थ है। हृदय की जो प्रीति भगवान् के लिए है उसे भक्ति कहते हैं—

महाप्रभु श्री बल्लभाचार्य ने भक्ति की व्याख्या करते हुये लिखा है "भगवान का माहात्म्य जानकर उनमें सबसे अधिक स्नेह होना हीं भक्ति कहलाता है। इसी से मुक्ति होती है।"

श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के अनुसार "भक्ति का अर्थ हुआ भाग होने का ज्ञान।" जीव जब यह समझता है कि वह ईश्वर का अंश है तो उसके समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं, उसका अन्तःकरण निर्मल व पवित्र हो जाता है, स्थूल भावनायें क्षीण हो जाती हैं (क्योंकि सूक्ष्म तत्व का अंश सूक्ष्म ही हो सकता है) और वह सूक्ष्म में मिलने का अधिकारी हो जाता है। सूक्ष्म का अंश तो सूक्ष्म ही हो सकता है।

विष्णु पुराण में भक्त प्रह्लाद प्रार्थना करते हैं "जिस तरह विषय भोगों में लिप्त लोगों में विषयों के प्रति एक चित्त प्रीति होती है, उसी तरह भगवान के प्रति अटूट और अविच्छिन्न प्रेम ही भक्ति का लक्षण है।"

भागवत में लिखा है "भगवान की महिमा और गुण-गान श्रवण करते ही समुद्र की ओर प्रस्थान करती हुई गंगाजी की अविच्छिन्न धारा की तरह चित्त की जब निष्काम अविच्छिन्न गति हो जाती है, उसी को भक्ति योग कहते हैं"। श्री मधुसूदन सरस्वती ने अपने ग्रन्थ "अद्वैत सिद्धि" में लिखा है "भगवद्भाव के द्रवीभूत होकर भगवान के साथ चित्त का जो सविकल्प तदाकारभाव है, वही भक्ति का लक्षण है।"

एक विद्वान के अनुसार "जो लोग भक्ति को मधुरी मनोराग कहकर उसकी अवज्ञा करते हैं, वे अज्ञानी हैं। भक्ति प्राकृतिक अनुभूति मात्र नहीं है। यह एक तेजस्विन चिन्मयी शक्ति है। इस शक्ति के प्रभाव से भगवान वशीभूत होते हैं। यह शक्ति ही विश्व की परम सत्य शक्ति है।"

स्वामी शङ्कराचार्य के अनुसार "स्व-स्वरूप का अनुसन्धान ही भक्ति है" इस भक्ति का आश्रय ही कल्याणकारक है। प्रभु ही जब सब तरफ दृष्टिगत होंगे, तब जीव के कल्याण में भला क्या देरी है?

हर आन में हर बात में हर ढंग में पहचान
आशिक है तो दिलबर को हर रंग में पहचान

हँसता है कोई साद किसी का है बुरा हाल
रोता है कोई होके गमो दर्द में पामाल
नाचे है को शोख बजाता है कोई ताल
जब गोर से देखा तो सारी है उसी की चाल

एक दिन व्रज में गोचरण करते हुए श्रीकृष्ण गिरिराज गोवर्धन की एक शिला पर बैठ गये। कोई सखा समीप नहीं था। 'राधा राधा' कहने लगे। नेत्र बंद हो गये। ध्यान लग गया। थोड़ी देर में नेत्र खुले, देखते हैं तो सामने श्रीराधा खड़ी हैं। चौंके—'कोई दूसरा देख तो नहीं रहा है। दृष्टि पीछे की तो वहाँ भी श्रीराधा दीखीं।

राधा पुरःस्फुरति पश्चिमतश्च राधा
राधाधिसव्यमिह दक्षिणतश्च राधा।
राधा खलु क्षितितले गगने च राधा
राधामयी मम बभूब कुतस्त्रिलोकी ॥

जिधर दृष्टि गयी, उधर श्रीराधा ही दीख पड़ी। बोले—'मेरे सामने राधा दीखती हैं और पीछे भी दीखती हैं मैं अपने बायें राधा को देखता हूँ तथा दाहिने भी। पृथ्वीतल पर भी मुझें राधा दीख रही हैं एवं आकाश में भी। यह मेरे लिये त्रिलोकि राधामय कैसे हो गयी है?'

प्रेम (भक्ति) समस्त संसार को ही प्रेमी (प्रेमास्पद) बना देती है, प्रेमी अपने प्रेमास्पद के आने की ही चिन्ता

करता हैं—उससे सम्बन्ध की मिलन की इच्छा रखता—एक
उर्दू के विद्वान् ने लिखा है—

दिल में समा रहे हो तुम
रूह पै छा रहे हो तुम
हवा जब सरसराती है
मैं समझता हूँ कि आ रहे हो तुम

पतति पतत्रे विचलति पत्रे शङ्कितभवदुपयानम् ।
रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम् ।।

पत्ते के टूटने से, हिलने से, पक्षी के उड़ने से, पशु के
दौड़ने से यही लगता है कि वे आ रहे हैं। प्रत्येक शब्द में प्रेमी
को प्रियतम की पदध्वनि ही सुनायी पड़ती है।

प्रेमी बोलते हैं तो उसी प्रेष्ठ का नाम लेते, उसी की
चर्चा करते हैं। दूसरों की कौन कहे, आत्माराम महामुनी
भी जो स्वयं निर्गुण ब्रह्म में परिनिष्ठ हैं, बोलते हैं तो उस सगुण
की ही चर्चा करते हैं।

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया ।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ।।

'राजर्षि परीक्षित् ! मेरी निर्गुण में दृढ़ निष्ठा है, किन्तु
करूँ क्या ? उत्तम श्लोक भगवान की लीला चरित ने मेरे चित्त
को पकड़ लिया, इससे विवश होकर मैंने श्रीमद्भागवत का
अध्ययन किया।'

प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः ।
नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः ॥

"यह कोई अकेली मेरी बात नहीं है । राजन् प्रायःविधि-निषेध से परे हो गये मुनिगण निर्गुण तत्त्व में स्थित होकर भी श्रीहरि के गुण-कथन में रमते—आनन्द मानते हैं ।"

निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः ।

जो त्रिगुणों से परे हो गये हैं, उनके लिये न कोई विधि है और न कोई निषेध ।

किन्तु विधि निषेध से परे ज्ञानी जन भी भक्ति का आनंद लेते हैं—तुलसीदास जी ने लिखा है, कि भगवान अवलम्बन देते है भक्त को—

एहि कारण मोहि पंडित भजहि
पाएहु ज्ञान भक्ति नहि तजहि

ज्ञान की प्राप्ति पर भी प्रभु की दया की आवश्यकता है ऐसा जान कर ज्ञानी भी भजन करते है

० ० ० ० ० ० ० ० ०

अगर तुम दुखों को अवश्य ही निवृत्ति चाहते हो, तो ईश्वर को किसी भी कीमत पर न भूलो ।

अगर आज तुझे सांसारिक भोग के प्राप्त होने पर सुख प्रतीत हो रहा है तो सांसारिक पदार्थों का वियोग निश्चित है, और तब दुःख भी निश्चित है ।

जप यज्ञ

यज्ञानाम् जप यज्ञोस्मि, भगवान् गीता में कहते—हे अर्जुन उत्तम प्रकार का सर्व सुगम सब काल—सब देश एवम् सभी सम्बन्धियों से सम्बन्धित होते—हुए भी जप यज्ञ हो सकता है व्याकरण में जप धातु का अर्थ "जप व्यक्तायाँ वाचि" स्पष्ट बोलना दूसरा "जप मानसे च" मन में उसे कहना। मन्त्र के बार-बार उच्चारण को जप कहते हैं। अग्नि पुराण में इसकी व्याख्या इस प्रकार से की गई है—

जकारो जन्म विच्छेदःपकारःपाप नाशकः।
तस्मा ज्जप इति प्रोक्तो जन्म पाप विनाशकः॥

अर्थात्—'ज' का अभिप्राय जन्म का विच्छेद और 'प' का अर्थ पापों का विनाश। जिससे जन्म-मरण और पापों का विनाश हो, वह जप कहलाता है।

हृदय में भगवान का नाम लेने को भी जप कहते हैं। एक विद्वान ने इसका अभिप्राय भगवान को प्रत्यक्ष करना बताया है और कहा है "इसकी अत्यावश्यक परिभाषा है—निर्बाध अन्तःकरण प्रकाश। यह सूक्ष्म करुणाद्र अन्तःकरण की विशुद्धि दीप्ति है। इस निर्णयात्मक स्थिति में सारे बन्धन छिन्न हो जाते हैं।" श्री रामकृष्ण परमहंस ने जप का अर्थ किया है "एकान्त में बैठकर, मन ही मन भगवान का नाम लेना।"

जप तीन प्रकार के होते हैं। वाचक, उपांशु और मानसिक। वाचक जप उसे कहते हैं जिसमें मन्त्र का उच्चारण स्पष्ट सुनाई दे। उपांशु जप उसे कहते हैं कि मन्त्र का उच्चारण होता रहे, होंठ हिलते रहें, परन्तु पास बैठ, व्यक्ति भी उसे सुन सके, जापक स्वयं ही उसे सुने (मनु २ । ८५)। मानसिक जप में होंठ और जिह्वा कुछ भी नहीं हिलते। मन्त्र के पद और अक्षरों के अर्थ पर मन में विचार किया जाता है। इन तीनों की उपयोगिता पर शास्त्रों (मनु २ । ८६, विष्णु ५५ । ६ वृद्ध पाराशर ४ । ५७) का मत है कि विधि यज्ञ से वाचिक जप यज्ञ दस गुना श्रेष्ठ माना जाता है। वाचिक जप से उपांशु जप सौ गुना होता है और उपांशु से मानसिक जप हजार गुना श्रेष्ठ माना जाता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

'नाम जपत मंगल दिसि दस हूँ'

'जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी'

नाम लेत भव सिंधु सुखाही।
करहु विचार सुजन मन माही॥

भगवन्नाम जप करने वाला चिन्ता की परिस्थिति में भी चिन्ता मुक्त रह सकता है, मन में एक काल में एक ही वस्तु रहती है, जब भगवन्नाम रहेगा। तब जगत नहीं रह सकता और जब जगत नहीं तो जगत की चिन्ता का भला क्या प्रश्न ?

जप द्वारा आयु वृद्धि के लाभों की वैज्ञानिक व्याख्या भी विद्वानों ने की है। २४ घण्टे में प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति २१६०० बार श्वास लेता है अर्थात् १ मिनट में १५ बार श्वास लेना

स्वाभाविक है। यदि किसी उपाय से इन श्वासों की संख्या कम हो जाय तो आयु वृद्धि सुनिश्चित है। प्राणायाम ऐसी योग की सशक्त क्रिया है जिससे श्वास-प्रश्वास क्रिया का नियमन किया जाता है। जप से भी ऐसा होता है। जप के समय श्वासों की संख्या स्वाभाविक रूप से कम हो जाती है। यह एक मिनट में १५ के स्थान पर ७–८ हो जाती है। यदि साधक एक घन्टा प्रतिदिन जाप करता है तो लगभग ५०० श्वासों की आयु वृद्धी होगी। अतः जो काम डाक्टरकी दवाई खाकरभी संभव नहीं वह कार्य भगवन्नाम से संभव है। प्रह्लाद ने नाम जप के प्रभाव से ही अग्नि, पर्वत, से गिरना एवम् अन्य अनेक कष्टों को सहन कर लिया।

"राम नाम जपतां कुतो भयम्"

भगन्नाम जप करने वाले को भय कहाँ ? सबसे सरल, सरस, एवम् योग, वैराग्य ज्ञान, एवम भक्ति का प्रदाता साधन नाम ही है।

जो इस नाम धन को लूट लेता है, वो धनी हो जाता है, और जो आलसी बना रहता है,वह जन्म जन्मान्तर तक दुःख का भाजन ही बनता है।

"राम नाम की लूट है लूट सकै तो लूट।
अन्तकाल पछताओगे जब प्राण जायेंगे छूट" ॥

नाम यज्ञ में घृत तिल, जौ आदि सामग्री की आवश्यकता नहीं और पुण्यप्रद भी विशेष है।

... ...

भजन साधन

यदि नाथ का नाम दया निधि हैतो दया भी करेंगे कभीनकभी
दुःख हरी हरो दुखिया जनके दुःख कलेश हरेंगे कभी नकभी।।
जिस अंग की शोभा सुहावनी है,उस सावल रंग मैंमोहनीहै।
वह रूप सुधा है सनेहियों के,दृग प्याले भरेंगे कभीनकभो।।
जहाँ गीध निषाद का आदरहै, और व्याध अजामिल काघर है।
वही भेष बनाकर उसी घर में, हम जा बैठेंगे कभी न कभी।।
करुणा निधि नाम सुनाया जिन्हें, करुणा मृत पान कराया जिन्हें ।
सरकार अदालत में वो गवाह, आ गुजरेंगे कभी न कभी।।
द्वारे पै आपके हैं हम पड़े, हैं इसी जिद में अड़े हुवे ।
अघ सिन्धु तरे है बड़े से बड़े तो ये बिन्दु तरेगें कभी न कभी।।

जब भक्त को प्रभु कृपा पर पूर्ण विश्वास हो जाता है, कि भगवान् अवश्य ही कृपा करेंगे, वो बड़े दयालु है, उनकी

कृपा जब बड़े से बड़े पापियों अधर्मियों पर हुई, तो क्या मुझ पर न होगी ?

मन (हृदय) विश्वास से भर जायेगा द्रवीभूत हो जायेगा

मेरे प्रभु बड़े दयालु हैं—मेरे नारायण करुणासागर हैं। वे सर्वज्ञ हैं। 'यः सर्ववित्' विश्व के गुप्त-से-गुप्त, सुक्ष्म-से-सूक्ष्म कोने तक में अनादिकाल से अब तक क्या-क्या हो चुका है; अब क्या हो रहा है, एवं अनन्तकाल तक होगा—यह सब कुछ वे निरन्तर जानते रहते हैं। 'अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः'× वे प्रभु सबका अनुभव करने वाले हैं।

ऐसे महामहिम होते हुए भी वे हमारे सुहृद् है। कृपा करना ही हर क्षण जिनका कार्य है। वृधावस्थादी कि दूसरे के वृद्धपन को रुग्णावस्था को देखकर प्राणी जग जाए।

जैसे अबोध शिशु के रोने की परवा न कर माता उसे स्नान कराती है, शरीर पर जमे हुए मैल को मल-मलकर धोती है, उलझे हुए बालों को ठीक करती है तथा कभी जब यह देख लेती है कि बच्चे के कपड़े जीर्ण हो गये हैं अथवा अत्यन्त मलिन हो गये हैं तब उन्हें बदल देती है, वैसे ही दयामय प्रभु हमारे रोने-चिल्लाने की परवा न कर हमें दुःख, विपत्ति, अपमान, निन्दा आदि विधानों से परिशुद्ध करते हैं और आवश्यकता होने पर वस्त्र-परिवर्तन की भाँति ही हमारे इस शरीर का मलिन आवरण हटाकर नव-जीवन प्रदान करते हैं।

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं
जायासुतादिषु सदा ममता विमुञ्च।

पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं
वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठ; ॥
धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम् ।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ॥

अस्थि, मास और रुधिर से भरे हुए इस देह में अभिमान छोड़ दो स्त्री-पुत्रादिकी ममता का सर्वथा त्याग कर दो।यह जगत क्षणभंगुर है, ऐसा निरन्तर विचार करो, वैराग्य में रसिक बनो और भक्ति निष्ठ होओ। निरन्तर धर्म का सेवन करो, लौकिक (सांसारिक लोगों के माने हुए) धर्मों का त्याग कर दो साधु पुरुषोंकी सेवा करो, विषयों की तृष्णाको त्याग दोदूसरे के गुण-दोषों का विचार तुरन्त छोड़कर भगवत-सेवा-कथा-रसका भरपेट पान करो।

हिंसा, परस्त्री, परधन और निन्दा ये जिसके अन्दर नहीं हैं वही भगवान को प्राप्त कर सकता है।

जो वाणी, मन, क्रोध, हिंसा, उदर और उपस्थ के वेगको सहन कर ले वही देवी सम्पत्तिवान् पुरुष है।

एसे दैवी सम्पत्ति वान् पुरुष ही सच्चे साधक बन सकते है भक्त और अज्ञानी में क्रिया का भेद तो कोई विशेष नहीं होता केवल भाव का ही भेद होता है; अज्ञानी कार में बैठ कर यात्रा तय करते हुए कार पर ही विश्वास रखता है भक्त भी बैठता कार में है किन्तु उसका विश्वास भगवान् में है जिसका हर क्रिया में विश्वास भगवान में है वह भक्त है और

जिसका विश्वास जगत में है वही अज्ञानी है। माता में भगवद् दर्शन करने वाला भक्त है पिता में भगवद् बुद्धि वाला व्यक्ति भक्त है जिसकी वुद्धि में भगवान् समा गये है वही भक्त है साधक है परमेश्वर का कृपा पात्र है परम कृपालु भगवान का अपना निज जन है मीरा जी ने एक पद लिखा है

भज ले रे मन गोपाल गुना।
अधम तरे अधिकार भजन सूँ, जोह आये हरि सरना ।।
अविसवास तो साखि बतादूँ, अजामील गणिका सदना।
जो कृपाल तन मन धन दीन्हो, नैन नासिका मुख रसना।।
जाको रचत मास दस लागे, ताहि न सुमिरो एक छिना।
बालापन सब खेलि गँवायो, तरुण भये जब रूप घना ।।
वृद्ध भये तब आलस उपज्यो, माया मोह भयो मगना,
गजअरु गीधहु तजे भजन सो, कोउ तर्यो नहिं भजनबिना।
घना भगत पीया मुनि सिवरी, मीरा हू की करो गणना ।।

मीराजी अपने मन को समझाती है भक्त स्वत: अपने— मन से बात करता कभी नारायण (अपने इष्ट देव) से वार्तालाप करता है मेरे पतित पावन प्रभु मुझ पर भी कृपा की कोर करो मैं आपकी शरण हूँ आप महान् कृपा सिन्धु है और मैं आपकी कृपा का इच्छुक हूँ भिक्षुक हूं जब सच्चे हृदय से प्रभु का दास बन जाता है अपने सर्वस्व को प्रभु अर्पण कर देता है— अपने जीवन का भार प्रभु पर छोड़ देता है तो निश्चित हर क्रिया ही साधन स्वरूप भजन स्वरूप बन जाती है।

—०—

तू और तेरा

मैं और मेरा यह महा भयानक अनादि काल से लगा हुआ रोग, है और इसकी औषधि है तू और तेरा सच्चे हृदय से जितनी बार पुकार सकें, हम पुकारते रहें—

'प्रभु हौं जैसो तैसो तेरो।'

सच तो यह है कि यहाँ इस विश्वमें हमारे लिये कोई भी विपत्तिका जाल नहीं; दुःखका कोई भी तनिक भी कहीं भी कारण नहीं है। सर्वत्र सब ओरसे हमारे लिये मङ्गलका, परम आनन्दका स्रोत बह रहा है। ऐसा इसलिये कि एकमात्र प्रभु ही सदा सर्वत्र विराजित हैं। हमारे आगे वे हैं, हमारे पीछे वे हैं, दाहिनी ओर वे हैं, बायीं ओर वे हैं, नीचे वे भरे हैं, ऊपर की ओर भी वे ही भरे हैं, सम्पूर्ण जगत् के रूप में वे ही हमें दीख रहे हैं—

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥

हमने मैं और मेरे की स्वीकृति जो दी है वही हमारे दुःख का कारण है, वस्तु परमेश्वर की और साईनबोर्ड हमारा जहाँ हमने अपना साईनबोर्ड लगवा दिया है, वही हमारा राग है और जहाँ पर राग है वहीं पर रोग (भवरोग) है, विचार की दृष्टि से देखे जब सब ही कुछ प्रभु का है तब हमारा बोर्ड हम लगाये क्या यह ठीक है ? प्रभु की वस्तु पर मुनीम बनो मालिक नहीं, हमारे घर में आँगन में धूप आजाती है तो क्या हम यह स्वीकार कर लेते है, कि यह हमारी है—जब हमसे बिना आज्ञा के धूप आई है तो बिना पूछे हुए चले जाना है, एसी स्थिति में वस्तु को अपनी स्वीकार कर लेना क्या बुद्धिमत्ता है ? अतः निश्चय करें मेरे नेत्रों के द्वारा प्रभु अन्दर बैठकर देख रहे हैं कानों से सुनने वाले तुम हो मेरे प्रभु आपको आनन्द आने लगेगा पूर्ण रूप से समर्पण होने पर जीवन में यह बाते आजाती है ।

(१) पूर्ण रूप से आश्रय ग्रहण करने के पश्चात् प्रभु की सत्ता हमारे हृदयमें सदा जागरूक रहेगी । प्रभु हैं, अवश्य हैं, सर्वत्र सब में समाये हुए हैं । यह भावना हमें कभी नहीं छोड़ेगी । आकाश में, वायु में, तेज में, जल, में थल में,मनुष्य में, पशु में, पक्षी में, कीट में, भृंग में, स्थावर में, जंगम में, जड़ में, चेतन में, कार्य में, कारण में, बड़े में; छोटे में, गुणवान् मे, गुणहीन में, गोरे में, काले में, सुन्दर में, कुरूप में—सर्वत्र एक ही प्रभु नित्य विराजित हैं, यह विश्वास कभी शिथिल नहीं होगा, बल्कि उत्तरोत्तर दृढ़तर होता जायगा ।

(२) हम एवं हमसे सम्बन्ध रखने वाली समस्त

वस्तुओं पर एक मात्र प्रभु का ही
सदा बनी रहेगी।

(३) जहाँ जिस समय जो
वह सब कुछ सदा सभी प्रकार से प्रभु के द्वारा
सर्वथा ठीक हो रहा है, कहीं भी तनिक भूल या प्रमाद नहीं है, मंगल ही मंगल हो रहा है, इस प्रकार प्रभु के प्रत्येक विधान से पूर्ण संतोष की सहज अनुभूति होगी।

(४) हमारी प्रत्येक चेष्टा प्रभु के लिये होगी एवं अहङ्कार से शून्य होगी। प्रभु यन्त्री बनेंगे, हम यन्त्र बन जायँगे। इस कोलाहलमय संसार में हमारी इन्द्रियाँ, शरीर-मन-बुद्धि—सभी काम तो करते रहेंगे, पर ये सब-के सब प्रभु की मंगलमयी इच्छा का अनुसरण करेंगे। इसीलिये हमारी चेष्टा में अनाचार, दुराचार, द्रोह, द्वेष, दम्भ, कपट आदि की गन्ध भी नहीं रहेगी। हमारी प्रत्येक चेष्टा में उत्कृष्ट सदाचार, विशुद्ध सेवा-भाव और हित करने का पवित्र उद्देश्य आदि ही भरे होंगे। यह सब प्रभु कृपा से ही संभव है प्रभु का नाम से अधिक हृदय को पवित्र बनाने वाला अन्य साधन क्या संभव है? जिन्होंने प्रभु को ही हृदय में बसा लिया है उनकी प्रत्येक क्रिया पवित्र उनके अन्त:करण से निकला हुआ एक-एक भाव सत्य क्योंकि सत्य स्वरूप परमात्मा ही जब अन्तःकरण में बैठे हुए हैं तो फिर अन्त:करण में दोषों को कहाँ स्थान है?

जिसका अंत:करण पवित्र होता है, उसकी रुचि पवित्रता की ओर ही होती है। कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में वर्णन किया है कि महर्षि कण्व के आश्रम में शकुन्तला को देख कर राजा दुष्यंत सोचता है—

असंशयं क्षात्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥

(अंक १ श्लोक १९)

निश्चय यह मुझ क्षत्रिय के साथ विवाह करने योग्य होगी, क्योंकि मेरा सुसंस्कृत चित्त इसकी अभिलाषा करती है। सज्जनों के लिये संदिग्ध वस्तु के सम्बंध में अपने अंतःकरण की प्रवृत्ति ही प्रमाण होती है।'

कण्व के आश्रय में शकुन्तला जो कि राजर्षि-विश्वामित्र की पुत्री उसके बारे में पवित्र हृदयी राजा दुष्यत की राज पुत्र है ऐसा निर्णय कर लिया—हृदय की शांति एकाग्रता, पवित्रता, सत्य, सकल्पता सर्व मंगल प्रदत्ता एवम् सर्वान्दता भगवान् के स्मरण मात्र से आ जाती है और प्रभु की विस्मृत्ति से तो धृतकता हो आवेगी—

विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः।

विपत्ति क्या है? भगवान की विस्मृति और सम्पत्ति क्या है? भगवान का स्मरण होते रहना।

कह हनुमान बिपति प्रभु सोई।
जब तब सुमिरन भजन न होई॥

स्मर्तव्यः सततं विष्णुः विस्मर्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः॥

शास्त्र में जितने विधि-निषेध हैं, वे इसी तथ्य के सेवक हैं—इसी तथ्य को सम्पुष्ट करने के लिये हैं कि निरन्तर भगवान का स्मरण करना चाहिये। भगवान को कभी भूलना नहीं चाहिये।

भगवान की स्मृति बनी है तो तुम्हारा पाप भी पुण्य बन जायगा और यदि भगवान भूल गये तो तुम्हारा पुण्य भी अहंकार उत्पन्न करके बंधन देने वाला—पतन का हेतु हो जायगा।

जहाँ मैं और मेरा है वहाँ पतन है पाप है और जहाँ तू और तेरा है वहाँ मंगल है आनंद है। मैं– अहंकार, तू—शांति आनंद, मेरा = बंधन, तेरा = मुक्ति।

... — ... — — ... —

—:o:—

जीवन

जीवन में तीन आवश्यकता है जिनकी पूर्ति अवश्य ही—परमेश्वर कृपा से हो जाती है होती थी, और सृष्टि के अनन्त-काल तक होती रहेगी—प्रथम जन्म वाले दिन से मृत्यु वाले दिन तक असन (भोजन) बसन (वस्त्र) सदन (निवास स्थान) माँ के उदर से उत्पन्न होते ही भोजन (दूध) वस्त्र आदि भी लपेट कर बाँध कर या पहन कर सिलवा कर जीवन प्रारम्भ होता है और निवास का भी प्रबन्ध हास्पीटल होस्टल या होटल कुछ भी हो किसी भी जगह निवास हो जीवन निर्वाह के लिए-

तृष्णा (इच्छा) भी तीन प्रकार की है इनके चक्कर में पड़ गया उसके उद्धार का कोई प्रश्न ही नहीं स्वाद शृंगार सन्तान भोजन की पूर्ति हो सकती है किन्तु स्वाद की नहीं हो सकती ?

वस्त्र की पूर्ति हो सकती है, किन्तु शृंगार की पूर्ति

नहीं हो सकती, निवास स्थान की पूर्ति हो सकती है किन्तु कभी भी सम्मान की पूर्ति नहीं हो सकती।

जो पुरुष इन इच्छाओं की पूर्ति के चक्कर में पड़कर हृदय को शान्त करना चाहे कभी भी उसका हृदय शांत नहीं हो सकता संत शिरोमणि सूरदासजी लिखते हैं।

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पै आवै ॥
कमल नैन को छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै ।
परम गंग कौं छाँड़ि पियासो, दुरमति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अम्बुज रस चाख्यो, क्यों करील-फल खावै ।
सूरदास--प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ॥

प्रभु को छोड़कर पदार्थ भला कैसे सुख दे सकते हैं ! यह सूरदासजी ने अपने मन की स्थिति जो अनुभव के पश्चात् प्राप्त हुई गाकर कह कर सुनाई........

भक्ति रस रूपा है और भोग नैराश्य देने वाले होते हैं। भक्ति प्रारम्भ से परिणास तक सुख ही सुख, आनंद ही आनंद, आह्लाद ही आह्लाद, प्रेम ही प्रेम है और भोग प्राप्ति में कठिनता, तात्कालिक असंतोष क्रिया के पर में अभिमान और परिणाम में महान् रोग, अशान्ति, दुःख क्लेश केवल पश्चाताप। किन्तु ऐसे निकृष्ट भोगों से बचने का उपाय भी एक मात्र हरि-भक्ति ही है। इष्ट है प्रीति सुख स्वरूप आनंद घन परमेश्वर की प्राप्ति की इच्छा उनके नामामृत का रस, उनके कथामृत का आनंद, उनकी परस्पर चर्चा की रसानुभूति...

यही तो अकारण करुणा दयरुणालय परम कृपालु परम दयालु, अशरण शरण प्रभु के स्वभाव की विशेषता है कि नाम मात्र से ही रस आनंद, शांति एवम् परम संतोष प्रदान करते हैं। परमेश्वर का रसमय आनंदमय नाम लेते हुए देह त्याग करने वाला वाह-वाह करते हुए देह को परम कृपालु प्रभु के चरणों में पुष्पवत् समर्पित कर देता है।

बको जलचरान् भुँक्ते मंडूकादिञ्च वर्जयन् ।
तथा यमः सर्वहन्ता वर्जयेत् रामसेवकान् ॥

भक्त की मृत्यु का प्रश्न नहीं, वह तो अपने पति सर्व-नियन्ता परमेश्वर समष्टि चेतन में व्यष्टि को मिलाकर परम लाभ से प्रसन्नता के कारण कह उठता हैं—'वाह मेरे स्वामी ! वाह, मेरे नाथ ! वाह, मेरे परम कृपालु भगवान् ! तुमसे इस जीर्ण शीर्ण वस्त्र को छीन कर मुझे चौरासी लाख प्रकार के वस्त्रों का स्वामी और अनंत कोटि ब्रह्मांडों का नायक निज स्वरूप बना लिया है, किन्तु दूसरी ओर भोगी अपने इस जो कुछ भी का मालिक बना हुआ उसे भी छिनते देख कर उफ्-आह,-आह, रो रो कर भी काल के हाथों अपने को सौंपना पड़ता है। भक्ति का परिणाम शांति आनंद-भोग का परिणाम रोना दु.ख।

मानव जीवन का गणना किया हुआ सीमित समय है उसमें से कुछ कम हो सकता है अधिक आशा नहीं फिर यदि कोई बिना प्रत्येक परिस्थिति के विचार किये परमेश्वर को भूल कर सुख चाहे वह कभी भी सुखी क्या होगा। इस संसरा में किसी न किसी प्रकार से सभी संसार दुःखी है—कोई धन

से जन के स्वभाव है, मन की कमजोरी से अथवा तन के रोग, शीत से, उष्ण से हानि से किसी के लाभ से, इच्छा से, तृष्णा से—

Swami Ram Says—

The multifold demand of life and the different claims on your physical and mental pawers are likely to keep you all the time strained and in tension. If these outside circumstances be allowed to keep you always on the rack, you are digging an early grave for you.

योग वशिष्ठ में, वशिष्ठजी कहते हैं, हे राम।

देहदुःख विदुर्व्याधिमाध्याख्यं वासना मयम् ।
मौर्ख्ये मूले हिते विद्यात् तत्वज्ञाने परिक्षयः ॥

शारीरिक दुःखों को व्याधि और वासनामय दुःखों को आधि कहते हैं। हे राम! यह जान लो कि इनका मूल कारण अज्ञान है, तत्वज्ञान होने पर इनका नाश हो जाता है।

भृशं स्फुरन्तीष्विवक्छासु, मौर्ख्ये चेतस्य निर्जिते ।
दुरन्नाभ्यवहारेण दुर्देशदुष्क्रमेण च

प्रबल इच्छाओं के पुनः पुनः स्फुरित होने से, अपनी मूर्खता से, चित्त के न जीतने से, दुष्टअन्न के भोजन से, निकृष्ट स्थानों में निवास करने से शरीर में व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं।

संसार दीर्घ रोगस्य सुविचारो महौषधम् ।
कोऽहं कस्य च संसारो विवेकेन विलीयते ॥

यह योगवासिष्ठ का श्लोक है। भाव यह है कि बार-बार जन्म लेना और मृत्यु का प्राप्त होना---यह 'संसार-रोग' जीव को अनादि काल से लग गया है। इस रोग की निवृत्ति के लिए एक ही औषधि है--'सुविचार' अच्छे विचार कैसे बने, इसके उत्तर में कहते हैं--'मैं कौन हूँ और यह संसार किसको और किस विधि से प्राप्त हुआ है ?'--इस सम्बंध में विचार करना चाहिए। यह विवेक पुरस्सर विचार संसार को उसी प्रकार शांत कर देगा जैसे औषधि रोग को मिटा देती है। भव-बंधन टूट जाते है। जन्म-मरण के कुचक्र का अन्त हो जाता है।

सद्विचार परमेश्वर के हृदयस्थ करने से ही प्राप्त हो सकता है, अन्य जगत के पदार्थों को हृदय में रखने से उन पदार्थों के प्रति तृष्णा ही बनी रहती है, वो तृष्णा हृदय को जलाती रहती है और यदि तृष्णा की पूर्ति, ही करनी हो और वो पूर्ति की रसूनी का किनारा प्रभु को पकड़ा दें, तुम्हीं करोगे, तुम्हारी कृपा से ही सब संभव है।

संत तुलसीदासजी लिखते हैं--

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं,
जियं जाचिअ जानकि-जानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ,
जो जारति जोर जहानहि से ॥

जगत् में किसी से मत माँगो। यदि माँगना ही है तो मन-ही-मन प्रभु से माँगते ही याचकता (दरिद्रता, कामना) जो सारे संसार को बरबस जला रही है, स्वयं जल जायगी।'

सचमुच प्रभु से माँगने वाले का मँगतापन सदा के लिये मिट ही जाता है—

तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।

प्रभु से इच्छा भी यदि उत्पन्न हो गई तब भी इच्छा के साथ २ ही सही प्रभु का चिन्तन तो बना ही रहेगा"

किसी भी वासना के साथ ही चाहे हो किन्तु जीवन भगवद्भजन रहित नहीं होना चाहिए यदि समस्त जीवन वासना मय करने में ही समाप्त कर दिया और प्रभु चिन्तत न कर सके तो भी जीवन का कल्याण मुश्किल है—और यदि वासना रख कर भी नाम का सहारा पूरी तरह से ग्रहण कर लिया तो निश्चित ही नाम रूपी मणि हृदय रूपी घर में प्रकाश करके प्रियतम—से मिला देगा नाम की महिमा अनन्त है अकथ नीय है संत तुलसीदास जी लिखते हैं—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू।
अपने बस करि राखे रामू॥
राम नाम अभिमत दाता।
हितु परलोक लोक पितु माता॥
नहिं कलि करम न भगति विवेकू।
राम नाम अवलम्बन एकू॥

कहौं कहां लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुन गाई॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको।
कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू।
लोक लाहु परलोक निबाहू॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ।
नाम जीहँ जपि जानइँ तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाय।
होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये॥
जपहिं नामु जन आरत भारी।
मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं।
करहु विचार सुजन मन माहीं॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू।
भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥

श्रीमद्भागवत में कहा है कि—

साङ्केत्यं परिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणम शेषाघहरं विदुः ।

पतितः स्खलितस्यार्तः क्षुत्वा वा विवशो ब्रुवन।
हरये नमःइत्युच्चैः मुच्यते सर्व पातकै ॥

अर्थात्—संकेत में, हँसी-मज़ाक में तथा अवहेलना पूर्वक भी जो भगवान् का नाम लेता है तो वह नाम सब पापों का नाश कर देता है। गिरते हुए, फिसलते हुए, छींकते हुए तथा विवश होकर जो मनुष्य "हरये नमः" का दृढ़ विश्वास पूर्वक उच्चारण करता है, वह सब पापों से छूट जाता है।

प्रभु के नाम में अनंत शक्ति है, इश शक्ति को जानकर ध्यान पूर्वक जो प्रभु का चिन्तन करता है, वह तो परम योगी है, ज्ञानवान् भक्त है, और अपने मानव जीवन में ही वह जीवन मुक्ति का विलक्षण आनंद उठा सकता है।

शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ।
अहङ्कारस्य दृश्यन्त जन्म मृत्युश्च नात्मनः ॥

(श्रीमद्भा० ११।२८।१५)

—जब श्रद्धा की खेती लहलहा उठी, तब खेत के स्वामी प्रभु भी उस शोभाका आनन्द लेने आ विराजे, उस खेतमें वही प्रकट हो गये। उनके आने पर अहङ्कार रहता नहीं—

'जब मैं था तब हरि नहीं, जब हरि हैं मैं नहिं।'

अहङ्कार गया कि सारे विकार विलीन होगये। समस्त अशुभ प्रशान्त हो गये। अवशिष्ट रहे एक मात्र प्रभु। न रहे हम, न रहा हमारे लिये जगत्। इसके पश्चात् जगत् की दृष्टि में

हमारे मन-बुद्धि-शरीर का अस्तित्व भले ही कुछ काल तक रह सकता है। पर उससे भी, वह जितने समय तक रहेगा, निरन्तर भगवद्भावों का विस्तार होता रहेगा। परम शुभ का, प्रभु में श्रद्धा करने का, प्रभु सम्बन्धी श्रद्धा के कार्य करते रहने से निश्चित ही जीवन में आनन्द भर जाता है, आनन्द मय जीवन हो जाता है, माता पिता के द्वारा जन्म और शास्त्र गुरू और सन्तों के द्वारा जीवन प्राप्त होता है, किन्तु प्रभु क्या तो जीवन के हर क्षण में हर कण में हर स्वांस में जीव को प्राप्त होती रहती है और—प्राप्त होती रहनी चाहिए। आनन्द जीवन है आनन्द रहित जीवन तो समय व्यतीत करनेकी एक-स्थिति है जीवन में हृदय तो परिपूर्ण भगवान से भरेगा, पदार्थों से न आज तक किसी का हृदय भरा है नही भर सकेगा—एक अपने—कटोरे को हाथ में लिए घूम रहे थे, राज महल के ऊपर चिन्तित भाव से राजा खड़ा हुआ देख रहा था मंत्री के पूछने पर राजा ने बताया अमुक २ राज्य जीतूगा आदि २

संत ने आवाज दी क्या कोई मेरे कटोरे को भरेगा-यह अभी भी खाली है—

राजा ने कहा महाराज आप मेरे राज्य महल के समक्ष होकर जा रहे आप का कटोरा अभी २ मोहरो से भर दिया जायेगा—

संत ने कटोरा राजा के सामने खाली कर दिया, मत्री आदि सभी को आश्चर्य था, इतने महान् संत जिनका उपदेश सुनने अनेक राजे महाराज सेठ साहूकार अमीर गरीब आते-है,

राजा से इन्हें भीख मांगने यहां आने की क्या आवश्यकता थी ? राजा ने कटोरे की ओर देखकर मंत्री से मँगाओ मोहरें- आज्ञा होते ही मोहरों की थैलीयां आने लगी खजाने से राजा के पास इक लाईन (पंक्ति) खड़ी हो गई राजा अपने हाथों से थैली डालने लगा कटोरा खाली था पु:न थैलियां डाली गई किन्तु पात्र ज्यो का त्यो अभी अपूण था । धन रसक ने इशारा किया धन समाप्त—होने लगा है बस राजा तुरन्त दूसरे कोष की ओर इशारा किया, पुन: हीरे पन्ने जवाहरात—आने लगे किन्तु पात्र ज्यो का त्यो खाली ही बना रहा राजा ने पूछा महाराज अभी कितना धन इसमें और डाला जायेगा—संत ने कहा बस भरदो कितने का कोई माप तौल नहीं है, राजा ने मंत्री को आज्ञा दी अगला खजाना भी संत के पात्र में गिर गया किन्तु पात्र अभी तक भी अपूर्ण था राजा ने कहा महाराज आप कोई योगी हैं सिद्ध हैं या कोई जादूगर है, सत ने कहा मैं यह सब नहीं हूँ मैं तो मैं हूँ और तुम्हें उपदेश देने आया हूं, किन्तु मेरा पात्र भर दो, तो तुम्हें उपदेश हूँ राजा ने अपना ताज हीरों से जड़ा हुआ था संत के पात्र में डाल दिया पुन: अपने राज्य का सारा सामान एक पत्र में लिख कर डाल दिया—किन्तु पात्र अपूर्णं ही था, राजा ने कहा महाराज कम से कम यह तो बतादें कि—यह पात्र किस चीज का बना हुआ है जो भरना भी नहीं चाहता, अपूर्ण ही बना हुआ है, संत ने कहा यह मानव के—हृदय का बना हुआ पात्र है जो न कभी पूर्णं हुआ है और न कभी पूर्ण होगा—राजा ने कहा महाराज फिर मुझे उपदेश कब देंगें ? संत ने कहा यही उपदेश है, इसे पूर्ण परमेश्वर से ही भरा जा सकता है अन्य संसार में एसी

कोई वस्तु नहीं जिससे यह पूर्ण हो, जिन्होने इस मानव हृदय को परमेश्वर से भरा और बाहर पदार्थों को रखा वो जीवन भर मुस्कुराये, कबीर का हृदय तो—

परमात्मा से पूर्ण है और ऊपर सामान्य से पदार्थों भी सुख के हेतु आनन्द के कारण बने हुए हैं और जो जगत के लोग पदार्थों से इसे भरना चाहते है, उनका हृदय अपूर्ण उनके हृदय में अशान्ति दुःख क्लेश—

अतः जीवन के गणना वाले दिनों में हृदय प्रभु से पूर्ण व रले यही जीवन की सफलता हैं

० ० ० ० ० ० ० ०

प्रसन्नता

भगवान् सत् घन चित् घन आनन्द घन है एवम् जीव उसका ही अपना अंश है, कारण के गुण कार्य में होना स्वाभाविक ही है, चीनी को यदि मिर्चा बनाई जावे जैसा कि दीपावली पर हलवाई लोग बनाया करते हैं, तो क्या वह मिर्चा कड़वी होगी ? नाम मिर्चा, रूप (शकल) भी मिर्चा की किन्तु चूंकि जिसका मूल तत्व ही मीठा है तो उसका कार्य भी मधुर ही होगा। जीव स्वरूप से आनन्दित है तो पुनः आनन्द के साधन की आवश्यकता क्या केवल स्वरूप की विस्मृति ही जीव के दुःख का कारण है—जैसे कोई विजया (भाँग) के नशे में घर पर ही घर को भूल जाए और आवाज लगाएं कि मुझे घर ले चलो घर ले चलो तब घर ले चलने नहीं है बल्कि तुम घर ही में हो ऐसा स्मरण दिलाना है।

संत पलटूदासजी ने कहा है—

"वैरागिन भूली आप में और जल में खोजे राम"
जल में खोजे राम जाप कर तीरथ छाने।
खोज फिरी चहुँ ओर नहीं सुधि अपनी आने॥
ज्यों फूलन में बास काष्ठ में अग्नि समानी।
खोदे बिन नहीं मिले रहे धरती में पानी॥
ज्यों दूध में घृत छिपा छिपी मेंहदी में लाली।
तैसे ही पूर्ण ब्रह्म कहूँ तिल भर नहीं खाली॥
पलटू कर सत्संग बीच में कर लें अपना काम।
वैरागिन भूली आप में और जल में खोजे राम॥

ज्ञानी अपने में परमेश्वर को खोज कर प्रसन्न है, एवम् भक्त अपने प्रभु को प्रसन्न करके प्रसन्न रहता है।

'एवं श्रीश्रीरमण भवता यत्समु त्तेजितोऽहं,
चाञ्चल्ये वा सकल विषये सारनिर्द्धारणे वा।
आत्मप्रज्ञाविभव सदृशैस्तत्र यत्नैममैतेः,
सार्कं भक्तरर्गातसुगते तुष्टिमेहि त्वमेव'॥

अशरण शरण कमलापति विश्वात्मन। मैं बालसुलभ चञ्चलता वश अथवा आपके द्वारा प्रेरित किये जाने पर सम्पूर्ण विषयों का सार सञ्चित करने में प्रयुक्त हुआ हूँ। बुद्धि के अनुसार ही मेरे द्वारा किए गए इस प्रयत्न से आप अपने सम्पूर्ण भक्तों सहित मुझ पर प्रसन्न हों।

संसारी माल मस्त है और जो माल मस्त है, वह माल के समाप्त होने पर वियोग दुःख से दुःखी होकर रोयेगा, किन्तु भक्त तो खयाल मस्त है, स्व में अपने आप में सत् घन सत्य संकल्प परमेश्वर से सम्बन्धित जीवन व्यतीत करता है।

सत्यता को माता बनाकर, ज्ञान को पिता बनाकर।

'सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा ।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः ॥'

सत्यता मेरी जननी है और ज्ञान जनक है, धर्म भाई है और दया मित्र, शान्ति स्त्री है और क्षमा पुत्र, ये ही छह मेरे बान्धव हैं जिनके साथ सुख पूर्वक मैं जीता हूँ जब ये मेरे साथ है तो प्रसन्नता ही प्रसन्नता है।

स्वः सिन्धु तीरेऽघविघातवीरे, वहत्समीरे करलभ्यनीरे ।
वसन्कुटीरे परिधाय चीरे, करोभ्यधीरे न रुचि शरीरे ॥'

हे दीन बन्धु परमेश्वर आप बड़े कृपालु है मेरी इच्छा है कि जहां शीतल वायु बह रही है, अञ्जलि से ही जल पीने को मिल जाता है. ऐसे पाप नाश करने में बीर गगना-तट पर वस्त्रों के दो टुकड़े पहिन, कुटिया में निवास करता हुआ मैं सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर दूंगा किन्तु इस क्षण भंगुर शरीर से प्रेम नहीं करूंगा। बल्कि सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप आनन्द स्वरूप परमेश्वर से अद्वय भाव स्थापित करके—

अपने जीवन में भगवत् तत्त्व को जो जीव का अपना आनन्द स्वरूप है उसे पहचान कर उसकी अनुभूति करके—

मैं भगवान् का आनन्द स्वरूप अंश आनन्द स्वरूप हूँ सत्य स्वरूप हूँ।

शिवोहम् शिवोहम् शिवोहम् शिवोहम्
अमर आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ ॥ शिवोहम्
अखिल विश्व का जो परमात्मा है।
सभी प्राणियों का वही आत्मा है।
वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ।
शिवोहम् शिवोहम् शिवोहम् शिवोहम्।
जिसे शस्त्र काटे न अग्नि जलावे।
गलावे न पानी न मृत्यु मिटावे।
वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ।
शिवोहम् शिवोहम् शिवोहम् शिवोहम्।
अजर और अमर जिसको वेदों ने गाया।
यही ज्ञान अर्जुन को हरि ने सिखाया।
अमर आत्मा है मरण शील काया।
सभी प्राणियों के जो भीतर समाया।
वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ।
शिवोहम् शिवोहम् शिवोहम् शिवोहम्।
है तारों सितारों में प्रकाश जिसका।

है चन्द्र मैं सूरज में आभास जिसका।
जो व्यापक है कण २ में हैं बास उसका।
नहीं तीन कालों में हो नाश जिसका।
वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ।
शिवोहम् शिवोहम् शिवोहम् शिवोहम्।

जब अपनी निज स्वरूप की अनुभूति हो गई तब पुनः दुःख कहां क्लेश कहाँ ? शरीर में अंहता ममता के नाते ही दुःख हैं।

देह को मैं मानना सबसे बड़ा यह पाप है।
सब पाप इसके पुत्र हैं सब पाप का यह बाप है॥

शरीर को मैं मानना या मेरा मानना ही दुःख है ज्ञानी चेतन को मैं और देह (शरीर) को यह समझकर ममता की बेड़ी को काट देता भक्त तू ही तू, परमेश्वर ही परमेश्वर भगवान ही भगवान-मेरा तन प्रभु का है मन प्रभु का है धन प्रभु का है, मेरे रखवाले प्रभु है, मेरे स्वामी प्रभु है मैं तो उनकी हाथ की पुतली हूँ मैं तो उनके हाथ का खिलौना हूँ वही—मेरे सच्चे सहारे हैं वहीं मेरे पालक है-वही मेरे अपने है, मैं उन्हीं का हूं, किसी कवि ने कितना सुन्दर लिखा हैं है

सखे,भव-डगर पर भटकते पथिक को,
तुम्हीं एक सहारा रहे हो, रहोगे।
तुम्हारी ही कल-स्नेह छाया में पलकर,
कली कामना की सदा मुस्कराई,

तुम्हारे मधुर स्नेह के नव विटप पर,
पिकी प्राण की काकली गूँज पाई।
तुम्हीं से खुशी है, खुशी में तुम्हीं हो-
तुम्हीं जब नहीं, कुछ नहीं खुशनुमाई।
बितत व्योम में भाग्य के चमचमाते-
तुम्हीं एक सितारा रहे हो, रहोगे।
विकल वेदना वल्लकी के स्वरों में-
विभव राग-रंजित प्रणाम गीत गाती,
अभागे नयन से विरह की अमों में-
विकल चेतना मोतियों को लुटाती,
करुण क्रन्दनों में सजल कल्पना के-
सफल चित्र नित आंसुओं से बनाती,
तृषित चातकी आह को एक तुम्हीं तो-
सुखद मेघ-धारा रहे हो, रहोगे
चली वेग से है प्रबल घोर झंझा,
ककुभ में तिमिर क्रूर भी घेर आया।
नियति के चरण रुनझुनाते क्षितिज से
पवन ताल देता हुआ गुन गुनाया।
मधुर स्वप्न के टूटने से उदधि का-
हृदय भी कसक पूर्ण हो बौखलाया।

प्रबल उर्मियों में छलकती तरी के
तुम्हीं एक किनारा रहे हो, रहोगे।

हे प्रभु दुख भंजना श्रुति मन रंजन देव।
लाखों जन्म भरमत फिरयो अब मेरी सुधि लेव॥
जप तप कछु जानूँ नहीं, जानूँ नहीं कछु ज्ञान।
सब बल से निर्बल भयो पड़यो शरण में आन॥
अवगुन किये ते बहु किये करत न मानी लाज।
पतित उधारण नाम सुन विसर गये सब काज॥

तनु धनु धाम राम हितकारी।
सब विधि तुम्ह प्रनतारत हारी॥
हेतु रहित जुग जग उपकारी।
तुम तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथमीत सकल जग माहीं।
सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन।
जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥
दच्छ सकल लच्छन जुत, सोई।
जाकें पद सरोज रति होई॥
महिमा नाम रूप गुन गाथा।
सकल अमित अनन्त रघुनाथा॥

श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं ।
रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ॥
अन्धकारु बरु रविहि नसावै ।
राम बिमुख न जीव सुख पावै ॥
धर्म परायन सोई कुल त्राता ।
राम चरन जाकर मन राता ॥

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥

(श्वेताश्वतर० ६ । २०)

'जब मनुष्य आकाश को चमड़े की भांति लपेट ले सकेंगे, तब उन परमदेव परमात्मा को जाने बिना भी दुःख का अन्त हो सकेगा ।'

यह असम्भव है, पर हम सुनने पर भी सावधान नहीं होते । दुःख के मार्ग में ही आगे-से-आगे बढ़ते चले जाते हैं । भगवन् हमें सद्बुद्धि दें !

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति । न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति ।

(बृहदारण्यकोपनिषद् ४ । ५ । ६)

'यह निश्चय है कि पति के प्रयोजन के लिये पति प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजन के लिये पति प्रिय होता है, स्त्री के प्रयोजन के लिये स्त्री प्रिया नहीं होती, अपने ही प्रयोजन के लिये स्त्री प्रिया होती है। पुत्रों के प्रयोजन के लिये पुत्र प्रिय नहीं होते, अपने ही प्रयोजन के लिये पुत्र प्रिय होते हैं।"

यह पढ़-सुनकर एक बार तो ऐसा लगेगा कि यह कैसे हो सकता है ? क्या हमारे सभी पारिवारिक, कौटुम्बिक सम्बंध प्रेमशून्य यह तो जब विवेक दृष्टि से समझेंगे तब ही पता चलेगा, कि ईश्वर के सिवाय कौन है ? इस जीव का साथी, सच्चा साथी परमेश्वर ही है। जो भगवान् के शरणागत हो गया है, जिसने अपना समस्त भार भगवान् के अर्पण कर दिया है, वो प्रभु का निज जन है, उसे दुःख कहाँ ? अशांति कहाँ ?

कितना सुन्दर लिखा है।

मम रक्षा को भार तथा रक्षा फल मेरो।
माधव को ही सकल, नहीं कछु वामें मेरो ॥
रहैं सदा अनुकूल, विमुख को मनते टारे।
शरणागति अनुकूल, विधी निज चितमें धारे ॥
स्वामिन् ? भार विहीन ह्वै, दास आप आधीन है।
सद्बुद्धी की कृपा ते, सेवा में तनलीन है ॥
वरदराज भगवान् ! शरण तेरी मैं आयो
अन्त समय में चरण, हेतु ही ईच्छा लायो ॥
दास पने में मती, हमारी नित थिर होवे।
मिलें आप ही मुझे, प्रयोजन यह ही होवे ॥

काम्य निषिद्ध करम ते, रहित रहूँ निज ही प्रभो ।
'शीलसिंधु' निज दास को, नित्य करें किंकर प्रभो ॥

भगवान् अपना स्वीकार करले फिर आनन्द है ही, प्रसन्नता ही प्रसन्नता है, भक्त अपने आपको प्रभु का मान लेता है, ज्ञानी अपने आप में भगवान् को जान लेता है और जहाँ भगवान् हैं वहाँ आनन्द तो नृत्य करता है। ज्ञानी जानता है—वह परमेश्वर को सर्वेश्वर आत्मानन्द ही जानकर सुख में प्रसन्नता में गोते लगाता है।

जब दिल में ही मेरे खुदाई है,
तो काबे में सिजदा कौन करे ।
जब रूप हमारा राम है,
तो फिर गैर की पूजा कौन करे ।
तू बर्क गिरा मैं जल जाऊँ,
तेरा हूँ तुझी में मिल जाऊँ ॥
मैं करूँ खता और तुम बखशो,
यह रोज का झगड़ा कौन करे ।
मेरे दिल में अभी के कुण्ड भरे,
जब चाहूँ मैं पी लूँ भर भर करे ।
बिन पीये नशे में चूर हुये,

मैखाने की परवाह कौन करे।

तू सामने आ मैं सिजदा करूँ,

मजा आ जाये सिजदा करने में

तू और कहीं मैं और कहीं,

यह नाम का सिजदा कौन करे।

... ...

—:o:—

जीवन में सभी के साथ रहना, खाना, पीना, उठना, बैठना, पैसे कमाना, खर्च करना आदि-आदि कार्य तुझे करने पड़ेंगे, लेकिन विचार कर, क्या जीवन का यही लक्ष्य है ? अगर नहीं तो जो जीवन का लक्ष्य है, उसकी पूर्ति का पूर्ण प्रयत्न कर।

× × ×

जिन वस्तुओं से सुख की इच्छा है, विचार कर क्या वह बहुत सुखी है ? मृगतृष्णा के जल ने जब उस स्थान को ही गीला नहीं किया तब मृगतृष्णा कैसे दूर होगी ?

कर्म विज्ञान

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है और फल में परतन्त्र है, किन्तु स्वतन्त्रता में भी भगवद् सत्ता ही तो आश्रय दाता है, इसलिए स्वतन्त्र होने पर भगवद् आश्रय परतन्त्र है ! जैसे सभा में सभापति का महत्त्व है; उसी प्रकार मानव जीवन में ही नही अपितु समस्त विश्व ही कर्म की दासता को स्वीकार करता, कर्म को प्रधान (सभापति) मानता है।

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा
जो जस करहि सो तस फल चाखा
अवश्यमेव भोक्तव्यम्, कृतं कर्म शुभाशुभम्

किये हुए कर्म का फल प्राणी मात्र को अवश्य ही भोगना पड़ता है, इससे कोई भी वंचित नहीं रह सकता कर्म फल अवश्य ही सब भोगना पड़ता है—किन्तु भक्त कर्म में विवेक रखता है, उसके कर्म में परमेश्वर विराजमान रहते है,

हे नाथ अब तो ऐसी दया हो।
जीवन निरर्थक जाने न पाये॥
यह मन न जाने क्या क्या दिखाये।
कुछ बन न पाया मेरे बनाये॥
संसार में ही आसक्त रह कर।
दिन रात अपने मतलब की कहकर॥
सुख के लिये लाखों दुःख सहकर।
ये दिन अभी तक यों ही बिताये॥
ऐसा जगा दो फिर सो न जाउँ।
अपने को निष्काम प्रेमी बनाऊँ॥
मैं आप को चाहूँ और पाऊँ।
संसार का कुछ भय रह न जाये॥
वह योग्यता दो सत्कर्म कर लूँ।
अपने हृदय में सद् भाव भर लूँ॥
नर तन है साधन भव सिंधु तर लूँ।
ऐसा समय फिर आये न आये॥
हे प्रभु हमें निराभिमानी बना दो।
दारिद्र हर लो दानी बना दो॥
आनन्दमय विज्ञानी बना दो।
मैं हूँ 'पथिक' यह आशा लगाये॥

भगवान् से प्रार्थना की हे नाथ अब एसी कृपा करदो—जिससे मैं जाग करके तुम्हें पाकर ही रहूँ, मेरा कर्म-मेरा धर्म-मेरा आचार मेरा व्यवहार सब आपके लिए हो! ज्ञानी कर्म करते हुए अपने आप के शुद्ध साक्षी स्वरूप को दृष्टा स्वरूप को जानते हुए कर्मों इन्द्रियों अन्तःकरण की वृत्तियों को देखता रहता है, उन कर्मों में से सदा ही अपने आप को भिन्न मुक्त स्वरूप अनुभव करता हुआ—जीवन मुक्त का आनन्द लेता है और मृत्यु—(देह त्याग) के पश्चात् बन्धन का प्रश्न ही नहीं क्योंकि कर्मो में न अभिमान था न कर्मों के फल की इच्छा ही थी? यह ज्ञानी के कर्म करने का Art है इस गुर से वह (गुरु) (ब्रह्म) (बड़ा) मुक्त स्वरूप जो सर्व का निज स्वरूप है।

चित्तवृत्ति क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र या निरुद्ध हुआ करती है। योग के अनुसार यदि प्रतिलोम-परिणाम-क्रम से प्राणायाम-प्रत्याहारादि के अभ्यास द्वारा चित्त को संसार से लौटाया जाय तो सम्पूर्ण वृत्तियों का निरोध चित्तसत्त्व में—प्रकृति में ही होगा। द्रष्टा अपने स्वरूप को जानकर—'सत्त्वान्यथाख्याति' होकर स्वरूप में स्थित हो जायगा।

तदा द्रष्टुःस्वरूपेऽवस्थानम् ।

'चित्तवृत्त का निरोध होने पर द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।' तब द्रष्टा के सम्मुख प्रकृति नहीं रहेगी। यह योग की पुर्णावस्था—निर्विकल्प समाधि की स्थिति है।

अब यदि कोई अहंकार सहित फल चाहने की इच्छा से या राग से करेगा तो कर्मानुसार उसे अवश्य ही भोगना पड़ेगा, बालक का देखना निष्प्रयोजन। वो किसकी ओर देखे चाहें धन हो या नवयुवती स्त्री पर बालक को क्या प्रयोजन वह तो केवल देखता है और देखना बंधन नहीं, बन्धन तो राग, अहंकार या कामना सहित देखना है।

कर्मकाण्डी कर्म के फल की ओर ध्यान रख कर कर्म करता है, जैसे व्यपारी की दृष्टि लाभ की ओर है और अज्ञानी बिना परिणाम सोचे कार्य में राग और अहंकार सहित स्वय को कर्तामानकर ईश्वरकी शक्ति कर्तावन) को भूल कर प्रवृत्त होता है अत: दिन रात अशान्ति बन्धन और क्लेश का ही भाजन बनता है हृदय की शान्ति उसे स्पर्श भी नहीं करती,

"जवानी में अदम के वास्ते सामान कर गाफिल
मुसाफिर शब से उठता है जो जाना दूर होता है

कर्म विवेक एवम् संयम पूर्वक होना चाहिए। प्रभु से निराभिमानता की शक्ति लेकर कर्मों का कर्ता प्रभु को मानकर एवम् कर्मों का फल भगवद् अर्पण करते हुए ही कर्म करना चाहिए।

० ० ० ० ० ० ० ० ०

ॐ

आत्म निष्ठा

वस्तु से पूर्व वस्तु का ज्ञान स्वरूप दृष्टा है जो अपने शुद्ध अद्वैत स्वरूप में स्थित है, वही आत्म निष्ठ पुरुष है "ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति" एक ही तत्व सर्वत्र परि पूर्ण है और वही द्रष्टा मैं हूं तात्पर्य स्व को पहचाना, जो स्व को पहचानता है, उससे पारब्रह्म अन्तर्यामी परमेश्वर जो सर्वव्यापी है, वह दूर कैसे ? सिया राम मय सब जग जानी उस अन्तर्यामी प्रभु को सर्वत्र जानना है (पहचानना है) प्रभु तो पहले से ही सर्वत्र हैं केवल उनको जान लेना मात्र है उनके पास पहुँचना नहीं। जो वस्तु दूर हो वहाँ जाना पड़ता किन्तु जो हो ही व्यापक उसके पास जाने व उसे अपने समीप लाने का कोई भी प्रश्न नहीं।

केवल स्वयम् को जो उस चेतन का अपना आप है
या यह कहिए कि जो चेतन सर्व का अपना आप है

और किसी भी प्रकार से न अलग था न है और न ही अलग किया जा सकता है, उस निज स्वरूप को जान कर स्वयम् में आनन्दित होना ही ब्रह्मानन्द में स्थिति स्व स्वरूप में स्थिति है इसी का नाम आत्म निष्ठा है।

ए इन्सान अपने आप को पहिचान
यही है भक्ति और यही है ज्ञान

देह को नहीं देही को पहचानना है वस्त्र को नहीं और जिस पर वस्त्र पहने हुए है उसे भी नहीं और जिसकी इच्छा से पहने हुए है उसे भी नहीं बल्कि जो तीनों का जानने वाला है उसे पहचानता है—आप स्थिर शान्ति उस अपने निज स्वरूप को बिना जाने नहीं पा सकते—

स्थिर शान्ति संसार के भोगों में नही क्योंकि विश्व की प्रत्येक वस्तु परिवर्तन शील और नाशवान है—स्थाई और अविनाशी शान्ति तो केवल परमात्मा से ही मिल सकती है क्योंकि परमात्मा ही अविनाशी और सच्चिदानन्द है। अब वह सुख स्वरूप परमात्मा हम से कहीं दूर नहीं बल्कि प्रत्येक प्राणी का हृदय उस परमात्मा का मन्दिर है। प्रत्येक प्राणी में वही परमात्मा सब का आत्मा बन कर बैठा हुआ है।

अगर इन्सान सच्चे अर्थ में इन्सां हो जाये।
तो फिर पहचान कर खुद को यह खुद भगवान हो जाये॥
चलन बिगड़ा बँधा इन्सां चलन सुधरे तो छुट जाये।
बधाँ भी आप है इन्सां अगर चाहे तो खुल जाये॥

ज्यों मकड़ी तन के जाला उस में खुद ही आप फँस जाये।
यूं अपनी खाहिशों में आप ही इन्सां बँध जाये॥
गुनाह की धूल से ढकसा गया यह आत्मा हीरा।
अगर यह धूल घुल जावे तो पैदा नूर हो जावे॥
यह गलती थे जो मूसा नूर समझा तूर के ऊपर।
अगर दिल साफ हो तो दिल ही कोहे तूर हो जावे॥
फरिश्ते तक कदम छूते हैं आकर ऐसे इन्सां के।
जो अपने आत्मा आनद में मसरुर हो जावे॥

यदि आत्मा में ही आनन्द है एसा जान लें और अपने आप में आनन्दित रहें अगर इसे छोड़कर पदार्थों से प्रसन्नता चाहने वाले को न तो आज तक प्रसन्नता मिली है और न ही मिल सकता है वह कार, कोठी, धन, जमीन आदि में भी प्रसन्नता को ही तलाश कर रहा हैं मगर जिस प्रकार गलत दवा से रोगी को आराम नहीं आ सकता इसी प्रकार जीव को परम शान्ति ससार के नाशवान पदार्थों से नहीं बल्कि सुख स्वरूप और अविनाशी आत्मा से ही मिल सकता है।

संसार के भोग जिसके पास नहीं, वह ही दुखी नहो, बल्कि जिसके पास धन, सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र, पौत्र इत्यादि सब कुछ है वह भी दुखी और परेशान है। वह दुखी और परेशान क्यों ना हो? जब कि नाशवान पदार्थों में अविनाशी शान्ति (Eternal Peace) है ही नहीं। कस्तूरी वाले मृग को जिस

तरह यह ज्ञान नहीं, कि कस्तूरी मेरी ही नाभी के अन्दर है बल्कि अनजान होकर जंगल में परेशानी से दौड़ता हुआ जंगल के एक वृक्षको छोड़कर दूसरे दूसरेको छोड़ कर तीसरे,इसीप्रकार प्रत्येक वृक्ष को इसी विचार से सूँघता फिर रहा है, कि शायद कस्तूरी इन्हीं वृक्षों में हो, मगर वृक्षों से कस्तूरी मिलती कहाँ है ? जबकि वहाँ है ही नहीं, ऐसी दशा में हिरण कस्तूरी तो चाहता है मगर कस्तूरी की तलाश गलत रहता है, उसी तरह सुख के समुद्र परमात्मा को भुला कर हिरण की तरह अज्ञानी पुरुष भी संसार रूपी बनखण्ड में भोग रूपी वृक्षों को सूँघता फिर रहा है ताकि किसी पदार्थ से सुख मिल सके। कामी पुरुष सुख को कामिनी में,कामिनी पुरुष में, लोभी धन में सन्तानहीन पुत्र में यात्री तीर्थ में पाठी पुस्तकों में, शराबी शराब में भङ्गड़ी भंग में अफीमी अफीम में, कर्मी स्वर्ग इत्यादि में तलाश करते फिर रहे हैं परन्तु न पदार्थो से सुख मिलना ही कहाँ है जबकि सुख ढूँढने वाले प्राणी की तलाश ही गलत है। सुख तो केवल अपने आत्मा या परमात्मा के अन्दर ही है। जहाँ सुख है वहाँ तो अज्ञानी पुरुष तलाश नहीं करता, और जिस नाशवान संसार में सुख का नामोनिशान नहीं, वहां तलाश कर रहा है।

इस गलत स्थान के ढूँढने को छोड़ कर अपने गुरूदेव के चरणों में बैठकर इस रहस्य को जा।

फानी दुनियाँ पर मरता है,
यह काम नहीं इन्सानों के।

खागर मुर्शद के पैर पकड़ जो,
राज़ खुलें इरफानों के।
गर तुझको तलब दीदारे खुदा,
क्या करना है दुनिया वालों से।
दिल ऊब गया जब महफिल से,
क्या मिलना है महफिल वालों से।
हो दौलत दौलतमन्दों को,
और तख्त मुबारिक शाहों को।
हम खाक नशीं है हमको भला,
क्या करना है हीरों लालों से।
जब फुर्कते यार सताती है,
काफूर नींद हो जाती है।
जो हैं फुरकते राम के मारे हुए,
उन्हें नींद न आई है सालों से।
बचते रहना इस दुनियां से,
भरपूर यह बेढब चालों से।
तुझे सौदाये राम से मतलब है,
कर बात तू संत दलालों से।
लाखों ही हसीं जिनके चेहरे,

लालों की तरह दमकते थे।
जिनके पैरों में मखमल पर,
चलने से भी छाले पड़ते थे।
जिनकी नजरों से जाहिद भी,
फुरकत की आग में जलते थे।
आखिर को नतीजा यह निकला,
वह खाक में मिलकर खाक हुए।
जिनके महलों के कंगूरे,
आकाश में बातें करते थे।
और रोआब दबदबे के झंडे,
जिनके ऊपर लहराते थे।
वह रोम हकूमत वाले जो,
दुनियाँ में धूम मचाते थे।
वह पान्डु योधा जिधर गये,
कर फतह लौट घर आते थे।
रावण और कुम्भकरण योद्धा,
जो दुनियाँ को दहलाते थे।
फरऊन कस जो ईश्वर तक को,
भी खातिर मैं नहीं लाते थे।

हम ही हैं खुदा जो ताकत की,
इतनी मगरूरी रखते थे।
जब मौत ने आकर दी ठोकर,
पाओं फैलाकर लेट गये।
फाखता कू कू करती है,
और पूछती है दीवारों से।
हैं खण्डर जिनके महलों के,
वह महल नशीं अब किधर गये।
दुनियाँ में हमेशा रहना है,
इस ख्याल में महल चिनाते थे।
मन्सूबे मौत बदल डाले,
उनकी कबरों पर झाड़ खड़े।
क्यों इसी फिकर में मरता है,
(कि) दुनियाँ में मेरा नाम रहे।
जीवन का लक्ष्य हैं परम शान्ति पाना।
यदि परम शान्ति पाना है, तो,
सुख स्वरूप परमात्मा का दर्शन करो।
यदि परमात्मा का दर्शन करना है, यो
अपने आत्मा का दर्शन को।
यदि आत्मा का समाधि में दर्शन करना है, तो,।

अन्तः करण का शीशा साफ करो।
यदि मन का दर्पण साफ करना है, तो।

बार बार विचार करें, तू कौन है, शरीर से क्या सम्बन्ध है जगत के पदार्थों से क्या रिश्ता है, तेरा इनका कब तक का साथ है ?

वक्ते पैदाइश तेरे घर में खुशी थी एक दिन,
आहो जारी से जनाजा भी उठेगा एक दिन॥
दौलतो नेमत व हशमत पै तू क्या मगरूर है,
कफन भी पैदा न हो आयेगा ऐसा एक दिन।
मुँह सजा था सेहरा थे शादी से तेरा एक दिन,
कफन का पल्ला तेरे चेहरे पै होगा एक दिन।
आज जो तेरे हजारों दोस्त जां देने को हैं,
वह आग में तुझको जलायेंगे मेरी जां एक दिन।
यह इरादा था सिकन्दर का करूँ दुनिया फतह,
क्या खबर थी मौत का हूँगा निवाला एक दिन।
आज उन्हीं के महल में हैं मकड़ियां जाला तने,
जिनके मिलने को तरसते थे फरिशते एक दिन।
कब्र से आई सदा गजरा जो मैं एक शह की
मेरी शोहरत का भी डंका बज रहा था एक दिन।

ऐ बुलबुलो क्यों हो फिदा इस चन्द रोजा बहार पर,
जाते हक बाकी रहेगी सब फना हो एक दिन।
याद रख दुनियां नहीं है दिल लगाने की जगह,
उस बका पै क्या खुशी जिसको फना हो एक दिन।

जो संसार के पदार्थ सुख रूप लगते है उनमें शान्ति नहीं बल्कि पदार्थो से मन को क्षणिक एकाग्रता होती है तो आत्मा का प्रतिबिम्ब मन पर पड़ता है तो सुखाभास होता है

नशा है गर शराब में दीवाने।
क्यों नहीं झूमते है बोतल पैमाने ॥

मन जितना अधिक एकाग्र होता है उतना ही अधिक आनन्द प्राप्त होता है। दुनियां में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है कि जो आपको हर समय ही आनन्द दे सके, दुनियां भर के सारे पदार्थ क्षणभगुर हैं उन से अविनाशी शान्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है प्रथम तो संसार की वस्तुएं ही क्षणभगुर हैं, दूसरे अगर वह कुछ काल ठहरी भी रहे तो वह हर समय आनन्द देने में असमर्थ हैं। एक ही चीज में प्राय: ऐसा देखा जाता है कि आज जो वस्तु सुख का कारण है तो कल वही दुःख का भी कारण बन जाती है। इससे सिद्ध हुआ कि दुनियां की चीजों में आनन्द नहीं बल्कि उनमें आनन्द का धोखा है। दुनिया की चीजें मन को थोड़ी देर के लिये, एकाग्र करने में तो समर्थ हैं। मगर सुख देने में समर्थ नहीं। मन की एकाग्रता में ही सुख का

अनुभव होता है। ऋषि मुनियों को जब यह मालूम पड़ा कि आनन्द संसार की वस्तुओं में नहीं बल्कि मन की एकाग्रता में है तो उन्होंने दुनियां की आशा तज कर मन को एकाग्र करने के साधन शुरु कर दिये। किसी ने अपने मन को वैराग्य (Renunciation) के द्वारा तो किसी ने अपने हठ योग के द्वारा, किसी ने राज योग के द्वारा तो किसी ने भक्ति के द्वारा मन को एकाग्र किया किन्तु सहज सुख तो आत्मा ज्ञानी पुरुष को ही प्राप्त हो सकता है, जो मन को भी भली भांति जानता है, मन उस आत्म निष्ठ पुरुष का चंचल नौकर आत्मारामी पुरुष उनकी किसी भी क्रिया को स्वीकार नहीं करता, स्वयम् के आनन्द में आनन्दित रहता है

हम तो हमारी बस्ती में झूमते चले हैं।
आदाब कर लिया बस जो राह में मिले हैं॥
हो चाहे जैसा मौका खाएँगे नहीं धोखा।
पाया है ज्ञान अब तो गुरुदेव से अनोखा॥
जो डूबते हैं डूबें हम तैरते चले हैं।
अलमस्त हैं खुशी में कहते हैं इसे जीना॥
ये मौत क्या बला है हमने पता न चीन्हा।
रास्ता मिला है पक्का हम दौड़ते चले हैं॥

दर-दर की खाक छानी पहले हुई हैरानी।
आशाओं की पाशों में उलझी थी जिन्दगानी॥
अब तो खुदी को पावों से रौंदते चले हैं।
ऐलान कर दिया है दुनियाँ से हम निराले॥
शक हो किसी को दिल में वो चाहे आजमाले।
ये देह तो मुकद्दर को सौंपते चले हैं॥

० ० ० ० ० ० ० ०

जहाँ शास्त्रों की चर्चा नहीं होती, सत्पुरुषों का सम्मान नहीं है, भगवान का अस्तित्व जहाँ नहीं माना जाता और जहाँ पर मां बाप और गुरू का अपमान होता हैं, वह घर-घर नहीं, बल्कि श्मशान से भी निकृष्ट हैं।

रूप सुन्दर हो, स्त्री रूपवती हो, धन बहुत ज्यादा हो और वाणी भी अति मधुर हो, किन्तु भगवद्-चिन्तन के बिना वह सभी बातें निरर्थक हैं।

भक्त के भगवान्

भगवान् का परम आश्रय रखने वाले को ही भक्त कहते हैं उसका जीवन प्रभु के आश्रित है वह प्रत्येक क्षण उस परम कृपाब्धि प्रभु की आशा रखता है -

भव सागर पार उतरने को तेरा एक इशारा काफी है।
दुख की दल-दल में जो फंस जाएँ उन्हें तेरा किनारा काफी है
भाई और बन्धु दोस्त मेरे जब छोड़ जुदा हो जाएंगे
उस वक्त खबर लेना मेरी प्रभु मुझे तेरा सहारा काफी है
जिस दिन दुनियां से मैं जाऊँगा प्रभु मौत के घोर अन्धेरे में
उस वक्त सामने आ जाना मुझे वो ही नजारा काफी है।
भव सागर पार उतरने को तेरा एक इशारा काफी है।
दुनियां की मुझे परवाह नहीं मुझे तेरा सहारा काफी है।

भक्त भला दुनियाँ को महत्व क्यो देने लगा ? उसके सहारे हो राम अपनी नौका को उसने भगवान् के हाथो में सौप दिया है

अब उसका भार अपने ऊपर नहीं बल्कि अब तो वह अपने प्यारे की गोदी में खेलता है जब हम टैक्सी में बैठ जाते हैं तो अपनी चिन्ता समाप्त हो जाती है अब टक्सी चलाने की सभा

लने की बचाव आदि की सभी चिन्ता ड्राईवर को करनी पड़ती है इसी प्रकार भक्त भी अपनी सभी चिन्ताओं को भगवान् के समार्पित कर प्रसन्न रहता है

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में और हार तुम्हारे हाथों में ॥
मेरा निश्चय हैं बस एक यही इक बार तुझे पा जाऊँ मैं।
अर्पण कर दूँ दुनिया-भर का सब प्यार तुम्हारे हाथों में॥
जो जग में रहूं तो ऐसे रहूँ जैसे जल में कमल का फूल रहे।
मेरे सब गुण-दोष समर्पित हों करतार तुम्हारे हाथों में ॥
यदि मानुष का मुझे जन्म मिले तो तब चरणों का पुजारी बनूँ।
इस पूजक की इक-इक रग का हो तार तुम्हारे हाथों में।।
जब-जब संसार का कैदी बनूँ निष्काम भाव से कर्म करूँ।
फिर अन्त समय में प्राण तजूं निराकार तुम्हारे हाथों में॥
मुझ में तुझ में बस भेद यही मैं नर हूँ तू नारायण है।
मैं हूं संसार के हाथों में संसार तुम्हारे हाथों में ॥
हम तुझ को कभी नहीं भजते फिर भी तुम हमें नहीं तजते ॥
अपकार हमारे हाथों में उपकार तुम्हारे हाथों में।
उद्धार-पतन अब मेरा है सरताज तुम्हारे हाथों में
अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।

मगर अपने भार को छोड़ने के लिए अपने आप को खोदेना पड़ता है भगवती जानकी जब भगवान् राम को ग्राम की महिलाओं के सामने अपना बतलाने लगी तो एक तरफ पर्दा करके तब प्रभु की ओर इशारा किया कि ये हैं मेरे तात्पर्य जगह की ओर से बिना पर्दा किये कोई भी भगवान् को अपना नहीं बना सकता—

जो सीस हथेली पै धर ना सके, वह भक्ति करना क्या जाने
जो ताने जगत के सह ना सके, वह प्रीत निभानी क्या जाने
जो नित विषयों में ही रमन करे, नहीं जगदीश्वर का ध्यान धरे
जो पाप की गठड़ी शीश धरे, भवसिन्धु वह तरना क्या जाने

भगवान् को अपना प्रियतम बनाने वाला तो अन्य किसी देव की उपासना भी स्वीकार नहीं करता उसका तो केवल एक अपने प्रेमास्पद प्रभु से ही प्रेम है—

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ।।
(श्रीमद्भागवत ११।२०।९)

भगवान कहते हैं—'जब तक वैराग्य न हो जाय अथवा जब तक मेरी कथा के श्रवण, पूजन, कीर्तनादि में श्रद्धा न हो जाय, तभी तक कर्म करने चाहिये ।'

भगवत्कथा-श्रवण में श्रद्धा हो जाय, कथा में रस आने लगे तो नियम पालन के लिए कथा मत छोड़ो । सन्ध्यावन्दन कालात्यय करके कर लेना ।

श्रद्धया सत्यमाप्यते ।

'श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है । श्रद्धा बड़ी चीज है । वृन्दावन में एक भक्त सायंकाल वृक्ष के नीचे बैठे थे । किसी ने कहा—'भक्त जी ! सन्ध्यावन्दन का समय हो गया है ! वे बोले–

सन्ध्यावन्दन भद्रमस्तु भवते भो स्नान तुभ्यं नमः
भो देवाः पितरश्च तर्पणविधौ नाहं क्षमः क्षम्यताम् ।
यत्र क्वापि निषद्य यादवकुलोत्तंसस्य कंसद्विषः,
स्मारं स्मारमघं हरामि तदलं मन्ये किमन्येन मे ॥

'सन्ध्यावन्दन ! तुम्हारा कल्याण हो । स्नान ! तुमको नमस्कार । देवताओ और पितरो ! मैं तुम्हारा तर्पण करने में समर्थ नहीं हूँ, अतः क्षमा करो । मैं तो कहीं भी बैठ जाता हूँ और यदुवंशशिरोमणि कंसारि का स्मरण कर लेता हूँ । इतने से ही मेरे पाप नष्ट हो जाते हैं । अतः मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है । दूसरे कर्मों से मुझे क्या प्रयोजन है ?'

कोई कुशासन या मृगचर्म आवश्यक नहीं हैं, चाहे जहाँ बैठ गये । यह ब्रज भूमि, जहां का कण-कण गोपियों की चरण-रज से परिपूत है, जिस रज में उद्धव तथा अक्रूर लोट चुके, ब्रह्मा जहाँ कोई तृण बनना चाहते भक्त अपने प्रभु के महत्व को जानता है

जिस वस्तु का मूल्य हम कम समझते हैं, उसकी विस्मृति स्वाभाविक है और जिसका मूल्य हमारी दृष्टि में अत्यधिक हो उसके विस्मरण का कभी प्रश्न भी उत्पन्न नहीं होता । हम

दुकानों पर छड़ी भूल जाते हैं, छाते भूल जाते हैं, रूमाल भूल जाते हैं, डायरी भूल जाते हैं, ट्रेनों में मोटे-मोटे नौविल भूल जाते हैं लेकिन ऐसा समय प्रायः नहीं होता, जबकि हम पाँच लाख का चैक भी भूल जायें। उसे हमने बहुत सँभालकर रक्खा है, उसे भूल नहीं सकते, क्योंकि उसका मूल्य हमें ज्ञात है। ठीक इसी प्रकार से जिससे हमारा प्रेम हो उसे भी हम नहीं भूल सकते क्योंकि हमें पता है कि यह कितना मूल्यवान है अथवा इसकी प्राप्ति के लिए कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है और परम प्रेमास्पद भी वही होता है, जिसकी हमें कीमत अधिक जान पड़े।

अतः जो भक्त भगवान् की कीमत जानता है कि उस जैसा कोई नहीं, वह कभी भी भगवान् को भूलने के लिए तैयार नहीं, बल्कि उसके पावन हृदय में एक ही भावना है कि हे नाथ! मैं तुम्हारा हूँ, मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ, लेकिन तुम्हें नहीं। चूँकि वह भगवान् के मूल्य को समझ चुका है अब हर परिस्थिति में भगवान् को अपना बनाना और स्वयं भगवान् का बनना चाहता है, बस उसकी एक ही इच्छा है कि तू मुझे किसी भी प्रकार से अपना बनाले भक्त को प्रभु के बिना अन्य कहीं पर भी शाँति नहीं जैसा भ्रमर नकली कागज के फूलों पर नहीं बैठता वैसे ही भक्त भी अन्य जगत के पदार्थों में नहीं रूकता वह प्रभु की समीपता उनकी याद उनकी लीला — किसी ने कितना सुन्दर लिखा है

ऐसा कोई कूल नहीं है, जिसे नीरकी नहीं आस है
ऐसा कोई फूल नहीं है, जिसे गन्धकी नहीं प्यास है

जिसको जगने कहा चूल है, उसका मैंने तिलक लगाया
जिसको मगने कहा धूल है, उसको मैंने गले लगाया
इसी मूलमें छिपा मन्त्र है, जीवनका इक यही तन्त्र है—
जिसको तूने सत्कारा है, वह तो जीवित उपन्यास है
मुझको प्यारा वही गेह है, तेरा रहता जहाँ वास है
पनघटपर जाकर क्यों यों मैं, अपनी रीती गागर फोड़ूँ
अपने प्यासे अधर दिखाकर, क्यों मैं अपने दिलको तोड़ूँ
प्यासेको पानी देता हूँ, विषमय जीवन जी लेता हूँ—
जिसको तूने अपनाया है, करता वह जगमग प्रकाश है
मेरा तो बस वही मीत जो तेरा रहता सदा दास है
भवनभवनमें क्यों मैं भटकूँ, मेरा घर तो वृन्दावन है
कलीकलीपर क्यों मैं अटकूं, मेरा धन तो मेरा मन है
मिट्टीसे सस्ता कंचन है, मेरा दरपन तो अरपन है—
चाहे तू मुझको न पुकारे, मैं तो रहता खड़ा दुआरे
कोई रस्ता नहीं कठिन है, यदि तू रहता सदा पास है

गोपियाँ तो कहती है कि तेरा नाम भी तो अमृत है आपकी चर्चा अमृत है। प्यारे यदि नहीं तुम्हारा ध्यान, तुम्हारा नाम, तुम्हारी कथा जो भी कुछ हो अमृत स्वरूप है और अमृत बनाने को सामर्थ वाली है

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥

(श्रीमद्भागवत १०।३१।९)

'श्यामसुन्दर ! तुम्हारी कथा अमृत है। भवताप संतप्त प्राणियों को जीवनदान करने वाली है। बड़े-बड़े मनीषी इसका गान करते हैं; क्योंकि यह समस्त पापों को नष्ट करने वाली है। केवल सुनने से ही मंगल करने वाली है। अनन्त वैभव से भरपूर है। संसार में वे सबसे बड़े दानी हैं जो तुम्हारी कथा का वर्णन-गायन करते हैं।'

भगवान श्रीराम जब साकेत पधारने लगे तो उन्होंने पवनकुमार से कहा—'हनुमान ! मैं तो अपने नित्यधाम जा रहा हूँ; किन्तु तुम मेरे भक्तों की रक्षा के लिये पृथ्वी पर रहो।'

श्री हनुमान जी ने प्रभु की आज्ञा स्वीकार करते हुए कहा—

यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी ।
तावत्स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन् ॥

'जब तक पृथ्वी पर आप की पतितपावनी कथा रहेगी, तब तक मैं पृथ्वी पर आपकी आज्ञा का पालन करता हुआ रहूँगा।' भगवान के वियोग का दु:ख तो श्रीमारुति को असह्य नहीं है, किन्तु भगवत्कथा सुनने को न मिले, यह असह्य है।

गोष्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रु तचेतसः।
कृष्णलीलाःप्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान्।।

जब भगवान् वन को जाते है था गोप ग्वाल गोपियों के साथ नहीं होते तो भी गोप ग्वाल

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणम्।
यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषम्।
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्धयाऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात्
करोति यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत्
(श्रीमद्भाग० ११।२।३६)

'शरीर से,वाणीसे, मन से, इन्द्रियों से, बुद्धि से, चित से अर्थात् क्रिया के रूप में, बोलने-सोचने-विचार करने आदि के रूप में जानबूझकर या अभ्यासवश स्वतः जो कुछ भी होता है, उस सबको परम पुरुष भगवान को समर्पित कर दे।' ऐसा कर दिया तो अपनी कामना कहाँ रही ?

और जब अपनी निजी कोई कामना ही नहीं रही तो निजी बन्धन कहाँ वह तो प्रभु से प्रभु भक्त का बन्धन हो गया जो भक्त को मुक्त करा कर ही छोडेगा-परमेश्वर का बन्धन तो बिना भगवत् स्वरूप बनाये छूटता नहीं।

मेरी आशा यही है एक प्रभु तुम्हें,
अपनी कहानी सुनाया करूँ ।
इक फूल बनाकर दिल अपना,
तेरे चर्णों में भेंट चढ़ाया करूँ ॥
धन सम्पत्ति परिवार सभी,
अविनाशी हरि सब नश्वर हैं ।
वैराग्य की चोटें दे दे के सोये,
मन को मैं रोज जगाया करूँ ॥
चलते, फिरते, खाते, पीते,
जीते, मरते नहाते धोते ।
हर स्वाँ पै तेरी याद रहे ऐसी
लगन मैं मन में लगाया करूँ ॥
तू सिंधु है मैं बिंदु हूँ, तू सूरज हैं मैं ज्योति हूँ ।
मुझे मेरी भी होश रहे न हरि तेरा ऐसा मैं ध्यान लगाय करूँ ।
ज्यों सिंधु के बीच मिले बिंदु सूरज में ज्योति समा जाये ।
मैं तुममें एसा मिल जाऊँ मैं तू का ही भेद मिटाया करूँ ।

भक्त स्वयम् को भगवान् में डुबो देता है ।
उठे राम की मुहब्बत का दरिया ॥
मेरा डूब जाने को जी चहता है ।

खुदी को मिटाने को जी चाहता है ॥
तुझी में समाने को जी चाहता है ।

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण या भूमिका
व्योमाकाशखखाम्बराब्धिवसवस्त्वत्प्रीतयेऽद्यावधि ।
प्रीतो यद्यसि ताः समीक्ष्य भगवंस्तद् वाञ्छितं देहि मे
नो चेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनर्मामीदृशीं भूमिकाम्॥

रहीम कवि ने लिखा है हे प्रभु यदि मेरे चौरासी लाख वेष बनाकर नाचने से आप प्रसन्न है तो मेरी यह इच्छा है, कि आप अपने में मिलालें और यदि मेरे चौरासी लाख Part आप को नहीं लुभा सके तो आप मुझे अब कोई भी Part न दें—तात्पर्य मुक्ति दे दें ।

"बुरा हूँ भला हूँ मैं जैसा भी हूँ,
जहाँ के चलन से तो हूं बेनियाज ।
अलग क्यों समझते हो मुझको फिगार,
तुम्हारा हो बन्दा हूँ बन्दनवाज ॥"

सब छूटे तो छूटे पर तुम मुझे न छोड़ना हे नाथ हे परम दयालु तुम्हीं मेरे जीवन धन हो तुम्हारे बिना संसार जलती हुई आग है खतरा है कहीं भी शान्ति नहीं तुम्हारे सिवाय हे नाथ तुम्हीं मेरे एक मात्र सहारे हो तुम्हारे जैसा साथी संसार में कहां मिल सकता है

एक नवदम्पति किसी एक देश से दूसरे देश को पानी के जहाज (Ship) से जा रहे थे। पति भगवान् का अनन्य भक्त था। प्रातःकाल के समय पति अपनी सीट पर बैठकर माला से जप करने में संलग्न था। इतने में ही उस कमरे में एकाएक लाल बत्ती हो गई और घंटी बजने लगी। जहाज के चालक ने डरे हुए और दबे हुए स्वर में घोषित किया कि जहाज के एक इंजन में आग लग चुकी है और दूसरा इंजन काम नहीं कर रहा है, अब जीवन की आखिरी घड़ियाँ हैं। बस इतना सुनना था कि लोगों के मुँह से दुखभरी आह निकल गई, करुणा देवी ने नृत्य आरम्भ कर दिया। लोग अपने सम्बन्धियों को स्मरण कर-करके रोने लगे। इधर से उधर अपने साथियों को ढूँढ-ढूँढकर गले लगाने लगे। प्रलयकालीन दृश्य बन गया। धैर्यवान लोग अपने-अपने अनुभव लिखकर लकड़ी के बक्से समुद्र में फेंकने लगे ताकि दुनियाँ के लोग कुछ लाभ उठा सकें।

इधर वो पति महोदय नेत्र बन्द कर मालाजप रहे थे, बिचारी पत्नी बड़ी व्याकुल हो रही थी कि ये महाराज नेत्र खोलें तब तो कुछ कहा जाय। पत्नी से प्रतीक्षा न हो सकी उसने कहा—"देखिये, सुनिये जहाज में आग लग चुकी है, अब हमारा आखिरी समय है।" पति मौन ही रहा। पत्नी ने हाथ को झटका देकर कहा-"सुनिये ना, जहाज में आग लग चुकी हैं और आप भगवत्-भजन में ही तल्लीन हैं। आप नेत्र बन्द किये बैठे हैं, देखिए ना ? सुनिये ना ?" पति फिर भी चुप बैठा रहा। पत्नी का धैर्य टूट गया। उसने पति के सारे शरीर को अपने दोनों हाथों से पकड़ कर हिलाया, कहा-"सुनिये, न ?"——पति ने

माला एक तरफ रखदी और तुरत सीट से उठकर तलवार को म्यान से निकाल कर जोर से ऊपर उठाया और वार सा किया, किन्तु जब हाथ पत्नी की गर्दन के समीप आया तो धीरे से तलवार पत्नी की गर्दन पर रख दी। पत्नी अचल बैठी रही। पति ने पूछा "बताओ तुम डरीं नहीं ?" पत्नी ने कहा–"डरने की क्या बात थी, मैं जानती हूँ कि मेरे ऊपर तुम्हारी तलवार नही चल सकती, तुम मुझे अपना मानते हो मैं तुम्हारी हूँ तुम मुझे मार नही सकते पति ने कहा-भोली पगली जसे मैं तुझे नही मार सकता ऐसा ही मेरा प्यार परमेश्वर भी मुझे नही डुबो सकता मेरे उस प्यारे के हाथ में तूफान है तुरन्त ही घंटी बजने लगी खतरा हट गया भाव यह है कि प्रभु ही जब रक्षक हो तो भय की निवृत्ति तो स्वाभाविक ही समाप्त हो जाती है भय हटाना नही पड़ता। बल्कि भय में भी भगवान् के दर्शन होने लगते हैं फिर वह भय; भय नही यश का कारण बन जाता है जैसे मीरा के लिएसर्प,प्रह्लाद के लिए अग्नि, ध्रुव के लिए बन-गमन सुख-एवमं शान्ति का कारण बन गया।

.... — .... — .... — ....
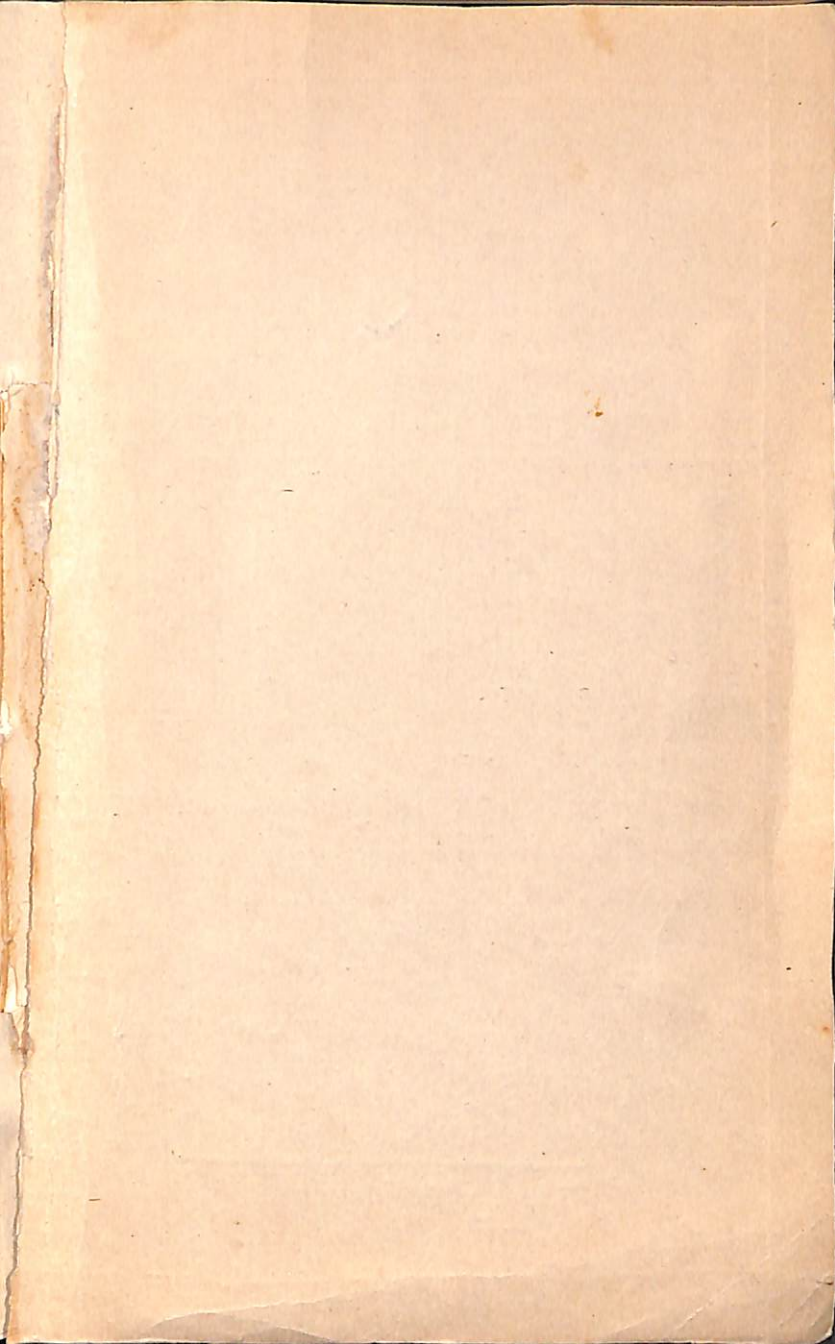
ॐ

परम हंस श्री १०८ स्वामी कृष्णानंद सरस
महाराज द्वारा लिखित पुस्तकें—

पावन पथ	मू.	१
भक्ति पथ	,,	,,
भक्ति सौरभ	,,	,,
भक्ति वैभव	,,	,,

प्राप्ति स्थानः—

पुस्तक विभाग परमार्थ निकेतन(स्वर्गाश्रम)ऋ
परमार्थ आश्रम सप्त सरोवर हरिद्वार,
सुखदा भक्ति आश्रम समीप रेलवे लाईन वृन
(म

आगामी प्रकाशन अध्यात्म दर्शन एवम् ज्ञा
भगवत् स्वरुप जनता की सेवामें शीघ्र ही आरह
मंत्री : गोपाल आश्रम फिरोजाबाद (उ० प्र०)

आवरण पृष्ठः—चम्पा प्रिंटिंग प्रेस, मथुरा।